अथ जन्माद्यधिकरणम्

जन्माद्यस्य यतः १।१।२

हरिभाष्यम्–चतुष्पदमेतत्सूत्रम् । जन्म आदि अस्य यत इति । अस्य जगतः जन्मादि (उत्पत्तिः, स्थितिः, प्रलयश्च) यस्मादुत्पद्यते तद्ब्रह्म । 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' इति सूत्रे उक्तम् । यस्य ब्रह्मणो जिज्ञासा क्रियते तल्लक्षणमभिधातव्यमित्याह-जडचेतनात्मकजगत् सर्वसाधारणस्य द्रष्टुं श्रोतुमनुभवे चायाति अद्भुतमस्यरचनायाः कस्मिंश्चिदंशेपि विभावयितुं बहवो वैज्ञानिकाश्चाप्याश्चर्यचकिता बभूवु अस्य पुरोवर्तमानस्य जगतो यतो यस्माज्जन्मादि भवति तज्जिज्ञासितं ब्रह्मेति वेदितव्यम् ।

(जन्माद्यस्य यतः १।१।२)

"जन्माद्यस्य यतः" इस सूत्र में जन्म, आदि अस्य, यतः" ये चार पद हैं । इसका अर्थ है–इस जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय जिससे होता है, वह ब्रह्म है । 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' इस सूत्र में ब्रह्म का लक्षण और स्वरूप कहा गया है । जिस ब्रह्म की जिज्ञासा की जा रही है उसका लक्षण विस्तार से कहना चाहिये, अतः जन्मादि कहा गया । यह जड़चेतनात्मक जगत् सर्वसाधारण के देखने, सुनने तथा अनुभव करने में आता है कि इस अद्भुत रचना का किसी भी अंशमें वर्णन करने में बहुत से वैज्ञानिक भी आश्चर्यचकित हैं ।

इस प्रत्यक्ष दृश्यमान जगत् का जिससे जन्म आदि होता हो उस जिज्ञासित ब्रह्म को जानना चाहिये ।

हरिभाष्यम्–

इदानी 'यतः' शब्दो विचार्यते । यतः इदं जगत् प्रथममाबभूव, तद्ब्रह्मेत्याशयः । प्राथमिकस्यैव जगतः कारणं ब्रह्म, तदस्य

प्रमाणम् । "एकोहं बहुस्यामि" ति सङ्कल्पितेन त्रिपाद्विभूतौ स्थितः सन् एकपादविभूत्यां भौतिकजगति पौनः पुन्येन स्वात्मानं माययाश्रित्य परिणमते । यथा–

ततो व्विराडजायत व्विराजो अधिपूरुषः ।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथोपुरः ।।
इत्यादि ऋगादि मन्त्रेषु सृष्टिक्रमो दृश्यते ।

भक्तिभूषण भाष्य–

प्रकृत में यतः इस शब्द का विचार किया जा रहा है– जिससे यह जगत् प्रथम उत्पन्न हुआ, वह ब्रह्म है, यह आशय है । प्राथमिक जगत् का कारण ब्रह्म है, इसका प्रमाण दिया जा रहा है– **"एकोऽहं बहुस्याम्"** इस संकल्प द्वारा त्रिपाद्-विभूति में स्थित रहते हुये एकपाद्विभूति रूप भौतिक जगत् में बारम्बार माया के सहयोग से अपने को परिणत करता है । यथा–उस अनादिनिधन आदि पुरुष से प्रथम विराट् पुरुष की उत्पत्ति हुई । उसके आश्रय से जीवात्मा की सृष्टि हुई । वह जीव सबसे आगे बढ़कर विविध शरीर को प्राप्त हुआ । उसके पश्चात् उस पुरुष ने भूमि आदि को बनाया, इत्यादि ऋक् आदि मन्त्रों में सृष्टि का क्रम वर्णित है ।

हरिभाष्यम्–

इत्थं ऋगादिमन्त्रेषु उपनिषत्सु च एकमेव ब्रह्म सर्वं बभूव । एक एव सूर्यं विश्वमनुप्रभूतः । विविधो भवन्निव प्रतीयते । एकैव प्रकाशः विविधरूपेण प्रकाशते । एक एवाग्निर्बहुभिः प्रकारैः प्रकाशितो भवति । तैत्तिरीयेऽपि–यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति० ।

भक्तिभूषण भाष्य–

इस प्रकार एक ही ब्रह्म सब कुछ है, ऐसा ऋक् आदि वेदों और उपनिषदोंमेंप्रतिपादित है। एक ही सूर्य जैसे विश्व को प्रकाशित करता है–और अनेक रूपों में उसकी प्रतीति होती है। एक ही प्रकाश नील पीतादि रूपोंमें प्रकाशित है। एक ही अग्नि विविध रूपों से प्रकाशित है। तैत्तिरीयमें भी यतः इस तसिलन्त पञ्चम्यन्तपद एक वचन का प्रयोग है। **"यतो वा०"** जिससे इस दृश्यमान और श्रूयमाण जगत् का जन्म होता है, जिसके द्वारा धारण और पोषण होता है। पुनः उसी में प्रलय, संहार अथवा प्रवेश होता है, उसीकी विशेष जिज्ञासा करो, वह ब्रह्म है।

इस प्रकार जिससे त्रिगुणात्मिका माया के सात्विक आदि गुणों का विकास हुआ। जिसके अनुसन्धान में बड़े–बड़े अध्यात्म-वैज्ञानिक विद्वान सदा निरत रहते हैं तो भी उसके आदि और अन्त का ज्ञान आज तक नहीं कर पाये। ऐसे आश्चर्य से पूर्ण उस विज्ञान केन्द्र का क्या रहस्य होगा? यह ध्यातव्य है। अतः उसे ही आत्मा, परमात्मा, ईश्वर, परमेश्वर तथा भगवान् आदि नाम से कहा गया है। अनेक गुणों के प्रकाशक होने से वह सगुणवाचक है तथा उससे निर्लेप(असङ्ग) रहनेसे निर्गुणवाचक है।

"जन्माद्यस्य यतः" का आशय यह है कि जैसे मकड़ी (कीट विशेष) अपने उदर से सूत को बाहर निकालती है और उससे जाल बनाती है तथा अन्त में पुनः उदर में ही समेट लेती है। जैसे बीजविशिष्ट पृथिवी से ओषधियां उत्पन्न होती हैं तथा जीवविशिष्ट शरीर से केश, लोम, नख आदि उत्पन्न होते हैं,

उसी प्रकार सूक्ष्मचिदचिद्विशिष्ट ईश्वर ही विविधरूपोंमें परिणत होता है । यथा—

यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च यथा पृथिव्यामोषधयः सम्भवन्ति ।
यथा सतः पुरुषात्केशलोमानि तथाक्षरात् सम्भवन्तीह विश्वम् ॥
(मु०उ० १।१।७)

इस विशाल सृष्टि की रचना में उसे कोई श्रम भी नहीं होता है, अतः आगे कहा **"लोकवत्तु लीला कैवल्यम्" (ब्रह्मसूत्र २।१।३३)** जैसे बच्चे खेल में गृह आदि का निर्माण करतें हैं । राजा आदि कन्दुक क्रीड़ा में प्रवृत्त होते हैं, वैसे ही इस जगत् का जन्म, पालन और संहार भगवान् की सहज लीला है । यदि कोई कहे कि बच्चों इत्यादि की लीला तो अज्ञान दशामें होती है तो इसका उत्तर यही है कि भगवान् को अज्ञान और माया का लेश भी मोहित नहीं करता है । जो सम्पूर्ण जगत् के जन्म प्रलय, गति तथा अगति को भी जानता है । विद्या और अविद्या को भी जो जानता है, वह भगवान् की संज्ञाको धारण करता है--

उत्पत्तिं प्रलयञ्चैव भूतानामगतिं गतिम् ।
वेत्ति विद्यामविद्यां च स वाच्यो भगवानिति ॥

जो धर्म और ऐश्वर्य से जगत् की उत्पत्ति,यश और शक्ति से पालन तथा ज्ञान और वैराग्य गुणों से संहार कार्य करता है, वह भगवान् (ब्रह्म) है । मुक्तदशा में भी जीव में ऐसा सामर्थ्य नही हो सकता । यदि कोई यह शंका करे कि वह परमात्मा अपने खेल में जीवों के प्रति पक्षपात क्यों करता है? वह दरिद्र,

निर्बल और दुःखी जीवन क्यों देता है? ऐसा करने से भगवान् में वैषम्यनैर्घृण्य दोष लग सकता है।

परमात्मा में यह दोष इसलिये नहीं लगता कि जीव अपने प्रारब्ध कर्मफल अवश्य भोगता है। शुभ कर्म से सौभाग्य और अशुभ कर्म से दुर्भाग्य फलभोग स्वयमेव बन जाता है।

जीव करमबस सुख दुख भागी ॥ (मानस)

अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ॥ (गीता)

अतः उसमें वैषम्य नैर्घृण्य दोष नहीं कहा जा सकता है। इस लीला सृष्टि का प्रयोजन क्या है ? अनन्तकोटि जीवों के शुभ और अशुभ कर्मों के अनुसार फल देना आवश्यक है। अतः कर्मफल दान ही सृष्टि का प्रयोजन है।

प्र०-कण-कण में व्याप्त सगुण ब्रह्म का शरीर क्या है?

उत्तर-यजुर्वेद के शतपथ ब्राह्मणमें इसका उत्तर है। यथा-

यस्य पृथिवी शरीरम्। यस्यापः शरीरम्। यस्याग्निः शरीरम्।यस्याकाशः शरीरम्।यस्य वायुः शरीरम्। शत०कांड१४

अर्थात् पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश जिसके शरीर हैं। वह सर्वशक्तिमान् ब्रह्म है **तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्** इत्यादि श्रुति वाक्यों का स्पष्टीकरण निम्नलिखित श्रीरामचरित मानस की पंक्तियों से भी हो जाता है। मन्दोदरी ने रावणको इस ज्ञान का उपदेश दिया है—

बिश्वरूप रघुबंशमनि करहु बचन बिस्वासु।
लोक कल्पना बेद कर अंग-अंग प्रति जासु ॥

पद पाताल सीस अज धामा । अपर लोक अंग अंग विश्रामा ।।
भृकुटि विलास भयंकर काला । नयन दिवाकर कच घनमाला ।।
जासु घ्रान अश्विनी कुमारा । निसि अरु दिवस निमेष अपारा ।।
श्रवण दिसा दस वेबखानी । मारुत स्वास निगम निज बानी ।।
अधर लोभ जम दसन कराला । माया हास बाहु दिगपाला ।।
आनन अनल अंबुपति जीहा । उतपति पालन प्रलय समीहा ।।
रोमराजि अष्टादस भारा । अस्थि शैल सरिता नस जारा ।।
उदर उदधि अधगोजातना । जगमय प्रभु का बहु कल्पना ।।

अहंकार सिव बुद्धि अज मन ससि चित्त महान ।
मनुज बास सचराचर रूप राम भगवान ।।

हरिभाष्यम्-–एवञ्च शरीरिजिज्ञासया शरीरमपि जिज्ञासितं भवत्येव । ब्रह्मणः शरीरे द्वे स्तः चिदचिच्चेति । चितो न जन्म तत एव न मृत्युः । ब्रह्मशरीर भूताच्चिदवशिष्यते, अचित्पदं जगदुपलक्षयति ।

ब्रह्मोपादानकारणत्वेयमपि सूत्रार्थः कर्त्तव्यः । जन्म च आदि चेति न पदद्वयम् । जन्म आदिर्यस्य तज्जन्मादि इत्येकमेव पदम् । अत्र तद्गुणसंविज्ञानो बहुब्रीहिः । तत्स्पष्टयति कस्य जन्मादि इति ? उच्यते । श्रृणु । जन्मस्थितिर्मृतिश्चेति क्रम–संक्रमः । पूर्वं जन्म भवति, पश्चात् स्थितिर्भवति, ततः पश्चान्मृतिर्भवति । षड्विकारेष्विमे त्रयो मुख्याः । अत्रादि पदेन स्थितिर्मृतिश्चापि गृहीतव्ये । सृष्टिश्च स्थितिश्च प्रलयश्चैतेषां समाहारः सृष्टिस्थितिप्रलयम् ।

अतः निश्चीयते यत् सृष्टेरपि, स्थितेरपि प्रलयस्यापि कारणं ब्रह्मैव तत्त्व संकल्पमात्रेण सम्पादयते इति श्रीमत्स्वामि-भगवदाचार्याः ।

भक्तिभूषण भाष्य

आगे कहते हैं—शरीरी ब्रह्म की जिज्ञासा द्वारा शरीर अर्थात् कार्य की भी जिज्ञासा स्वाभाविक होती है। ब्रह्म का दो शरीर है—चित् और अचित् । चित् का न जन्म होता है और न मृत्यु ही होती है । अचित् पद से जगत् का उपलक्षण होता है ।

अब ब्रह्म के उपादान कारण की सिद्धि हो जाने पर सूत्रार्थं करना चाहिये । यथा—जन्माद्यस्य में जो जन्मादि पद है, उसमें जन्म और आदि इन पदों का उच्चारण न करके एक ही पद कहना चाहिये । बहुब्रीहि समास में 'जन्म आदि जिसका हो वह जन्मादि, यह एक पद सिद्ध हुआ । इस प्रकार 'जन्मादि अस्य यतः" त्रिपदसूत्र हुआ । उसे स्पष्ट करते हैं किसका जन्म होता है ? सुनो, कहता हूँ । जन्म स्थिति और मृत्यु यही संसार का क्रम है । प्रथम जन्म, पश्चात् स्थिति उसके पश्चात् मृत्यु होती है । षड् विकारों में ये तीन मुख्य हैं । आदि इस पद से स्थिति और मृति का भी ग्रहण हो जाता है । सृष्टि, स्थिति और प्रलय इन पदों का समाहार है । यहाँ जन्मादि पदमें तद्‌गुण संविज्ञान बहुब्रीहि है । अतः यह निश्चित हो जाता है कि सृष्टि, स्थिति और प्रलय का भी कारण ब्रह्म ही है, वह इसे संकल्प मात्रसे सम्पादित करता है ।

विशेष—

षड्विकार—जायते, अस्ति, विपरिणमते, बर्द्धते, अपक्षीयते, नश्यति। अर्थात् भौतिक जगत् में प्रवर्त्तित पदार्थों का क्रमशः प्रादुर्भाव (जन्म) स्थिति परिणाम, पुनः विकसित होना, जर्जर होना और अन्त में नाश होना होता है।

समाहार—द्वन्द्व समास के चार भेद होते हैं, १-समुच्चय, २-अन्वाचय, ३-इतरेतर योग, ४-समाहार। यह चार्थ भी है। अनेक पदार्थों के समुदाय को समाहार कहते हैं। 'सृष्टि.स्थति-प्रलयम्' यहाँ अनेक पदार्थों का समूह होनेसे समाहार द्वन्द्व समास हुआ और "सनपुंसकम्" इस सूत्र से नपुँसक लिङ्ग हुआ। समूह में एक वचन का ही प्रयोग होता है क्योंकि इसमें समस्यमान पदार्थगत संख्या तिरोहित होती है।

तद्‌गुण संविज्ञान—जन्मादि पद में द्वन्द्व समास पक्ष को न मान कर आचार्यश्री ने तद्‌गुण संविज्ञान बहुब्रीहि माना है। इस समास में विग्रह वाक्यके पूर्व पद या उत्तरपद के अर्थ का अन्य पदार्थ में भान होता है—"तयोः पूर्वोत्तरपदयोः गुणस्य संविज्ञानं यस्मिन् सः तद्‌गुण संविज्ञानः" जैसे 'लम्बकर्णम् आनय' इस वाक्य में लम्बकर्ण पद में तद्‌गुण संविज्ञान है क्योंकि 'लम्बे कर्णे यस्य' इस विग्रहवाक्य में आये लम्ब तथा कर्ण दोनों पदार्थों का ज्ञान अन्य पदार्थ (जिस मनुष्य के कान लम्बे हैं उस) में स्पष्ट हो रहा है। इसी प्रकार ब्रह्म में जन्म स्थिति संहार का स्पष्ट ज्ञान आप्त प्रकरण तथा अनुमानादि द्वारा हो रहा है। 'जन्म

आदि र्यस्य' इस विग्रह वाक्यघटित जन्म और आदि पदार्थ का ज्ञान अन्य पदार्थ [ब्रह्म] में स्पष्ट हो रहा है, अतः जन्मादि पद में तद्गुण संविज्ञान बहुब्रीहि हैं।

दृष्टसागरः आदि अतद्गुण संविज्ञान बहुब्रीहि है क्योंकि अन्य पदार्थ [जिसने सागर देखा है उस] में दृष्ट और सागर पदार्थ का ज्ञान नहीं होता।

हरिभाष्यम्

तथा च केषाञ्चिन्मते ब्रह्म अकर्त्ता अर्थात् कर्मरहितं, तत्कथमकर्मण्ये ब्रह्मणि जगद्व्यापाररूपं कर्म सिद्धयेत् इति ? समाधत्ते, ब्रह्म परमार्थं कर्म करोति, स्वार्थं नहि। एतस्मात् तदकर्त्ता, अकर्म च कथ्यते इति वेदनीयम्। यद्यकर्मैव स्याद् ब्रह्म तज्जिज्ञासाया न स्यात् किमपि प्रयोजनम्। यद् भावि तद्भवतु को लाभस्तस्य जिज्ञासया ? एवं न वक्तव्यम्। कथन्न ? यन्न वदति, यन्न श्रृणोति, यन्न पश्यति, किं फलं तस्य जिज्ञासया ? परन्तु प्रस्तुतं सूत्रमेव वदति सृष्टि स्थिति प्रलयकर्तुर्ब्रह्मणो न निष्क्रियत्वमिति। निष्क्रियत्वं सृष्ट्यादि कर्तृत्वं च परस्परं विरुद्धम्। अतो नाक्रियं ब्रह्मात्र जिज्ञास्यम्। अतो ब्रह्म स्वार्थानपेक्षित्वान्निष्क्रियं जीवकृत कर्मफलप्रदानहेतुना जगतो निर्मातृत्वेन स्थापकत्वेन प्रलयकर्तृत्वेन च सक्रियम्।

किसी के मत में ब्रह्म अकर्त्ता अर्थात् कर्म रहित है तो अकर्मण्य ब्रह्म में जगत् के व्यापार रूप कर्म की सिद्धि कैसे हो सकती है ?

समाधान–ब्रह्म परमार्थ हेतु कर्म करता है, स्वार्थ हेतु नहीं इसलिये वह अकर्त्ता और अकर्म कहा जाता है, ऐसा समझना चाहिये। यदि ब्रह्म अकर्म ही हो तो उसकी जिज्ञासा से कोई प्रयोजन नहीं हो सकता। ब्रह्म जो हो वह हो, उसकी जिज्ञासा से कोई लाभ नही है, ऐसा नहीं कहना चाहिये। क्यों नहीं कहना चाहिये? जो न बोलता है, न सुनता है, न देखता है, उसकी जिज्ञासा करके क्या फल प्राप्त होगा?

परन्तु सुनो! प्रस्तुत (जन्माद्यस्य यतः) सूत्र ही बता रहा है कि सृष्टि,स्थिति और प्रलयके कर्त्ता होनेसे ब्रह्म की निष्क्रियता नहीं है। निष्क्रियत्व और सृष्टि आदिका कर्तृत्व परस्पर विरुद्धहै। अतः क्रिया रहित ब्रह्म की जिज्ञासा यहां नहीं है। स्वार्थ की अपेक्षा न होने से वह निष्क्रिय तथा जीवों के किये हुये कर्मों के फल प्रदाता के कारण जगत् का निर्माता, स्थापक एवं प्रलय का कर्त्ता होने से वह सक्रिय है।

हरिभाष्यम्–

अत्रेदमपि अवधेयं यत् द्युलोकस्थानीय ब्रह्मादिदेवकिन्नर-गन्धर्वैरधोलोकस्थानीयदानवादिभिस्तथा मृत्युलोकस्थानीय-मनुष्यपशुपक्ष्यादिभिः नानालोकान्तरे ब्रह्माण्डपूर्णैर्जीवैर्दरीदृश्यते यत् एतेषां जडचेतनानामस्तिकश्चित् कर्त्ता भर्त्ता हर्त्ता चेति सर्वैर्ज्ञायते, स एव ब्रह्मेति, परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते। यतोहि तस्यादिरन्तश्च न दृश्यते। एषु सर्वेषु सर्वज्ञः सर्वेश्वरः सर्वव्यापी सर्वरूपश्चास्ति। अयं दरीदृश्यमानः संसारः तस्यानन्त-

शक्तेः कश्चित् एकांशेन दृश्यते । स एको हि देवः सर्वभूतेषु प्रच्छन्नरूपेण सन्तिष्ठते । गोस्वामिपादेन तदुक्तम्—

जेहि महुँ आदि मध्य अवसाना । प्रभु प्रतिपाद्य राम भगवाना ॥
उपजहिं जासु अंस ते नाना । संभु विरंचि विष्णु भगवाना ॥
तथा—विषय करन सुर जीव समेता । सकल एक ते एक सचेता ॥
सब कर परम प्रकासक जोई । राम अनादि अवधपति सोई ॥
जगत् प्रकाश्य प्रकासक रामू । मायाधीस ज्ञान गुन धामू ॥

अपिच मंगलाचरणे "यत्सत्वादमृषैव भाति सकलम्" । एकोहं बहुस्याम्, तदैक्षत बहुस्यां प्रजायेय इत्यादि श्रुतिप्रमाणै यदृच्छया लोकानसृजत् ततः सूक्ष्मरूपं जगदिदं स्थूलरूपेण वर्तते । तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥ श्वेत उ० ६।१४) सर्वप्राणिषु प्रच्छन्नः सर्वव्यापी, सर्वभूतान्तरात्मा च स एव वर्तते । एष सर्वेश्वर एष सर्वज्ञ एषोऽन्तर्याम्येषयोनिः सर्वस्य प्रभवाप्ययौ हि भूतानाम् ॥ (माण्डूक्य उ० ६)

भक्तिभूषण भाष्य–

यहाँ यह भी जानना चाहिये कि जो द्युलोक में ब्रह्मा सहित देव, किन्नर, गन्धर्व आदि तथा पाताल आदि अधोलोक में स्थित दानवादि और मृत्युलोक स्थानीय मनुष्य, पशु-पक्षी आदि प्राणियों से युक्त जीव अनेक लोकलोकान्तरों के ब्रह्माण्डों से पूर्ण दिखाई पड़ रहा है इससे यही प्रतीत होता है कि इन जड़ चेतनात्मक जीवों का कोई कर्त्ता, भर्त्ता और हर्त्ता अवश्य ही है, यह सभी जानते हैं । वही ब्रह्म, परमात्मा और भगवान् कहा जाता है ।

क्योंकि उसका न आदि और न अन्त दिखाई देता है। इन सभी में सर्वज्ञ, सर्वेश्वर, सर्वव्यापी और सर्वरूप की सत्ता अवश्य है। अनेक चाकचिक्य से पूर्ण दिखाई दे रहा है यह संसार उसकी अनन्त शक्ति का एक अंश ही है। वह एक ही देव सभी प्राणियों के भीतर बाहर छिप करके बैठा है। गोस्वामिपाद ने कहा—

जेहि महुँ आदि मध्य अवसाना ... ...ज्ञान गुन धामू ॥

"यत्सत्वात्" आदि मंगलाचरण में भी लिखा है। 'एकोऽहं तदैक्षत०' इत्यादि श्रुति प्रमाण से वह अपनी इच्छा से ही इन लोकों की रचना करता है, इस कारण यह जगत् सूक्ष्मसे स्थूल रूप दिख रहा है।

"तमेवभान्तम्०" इत्यादि श्रुतियों का तात्पर्य यही है कि वह सभी स्थूल सूक्ष्म पदार्थों में व्याप्त है और वह सभी का अन्तर्यामी है। सर्वेश्वर और सर्वज्ञ वह परमात्मा सभी का कारण है क्योंकि सभी प्राणियों की उत्पत्ति, पालन और प्रलय का स्थान वही है। इति जन्माद्यधिकरणम् समाप्त हुआ।

❀ शास्त्रयोनित्वात् (१।१।३) ❀

हरिभाष्यम्—

वेदेषु ब्रह्म जगतः कारणमभिधीयते एतस्मादौचित्यमेव। व्याख्यायते येन प्रकारेण सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्मेति लक्षणं वेदोपनिषत्सूपलभ्यते, तथैव जगतः कारणमपि। अतः पूर्वसूत्रानुसारेण जगज्जन्मादिकारणं परमेश्वरं मन्तुं सर्वथौचित्यम्। शासु अनुशिष्टौ धातोः शास्त्र शब्दस्य सिद्धिर्भवति। शास्त्रं–योनिः कारणं

यस्य तच्छास्त्रयोनिः । तस्यभावः तत्त्वम्, तस्माच्छास्त्रयोनित्वात् । जगतो जन्मादिकारणं ब्रह्म इत्यत्र शास्त्रमेव प्रमाणम् । शास्त्रं शासनं वेदानुशासनमित्यर्थः ।

आहोत्वित् शास्ति मानवं धर्ममिति शास्त्रं वेदः । तेषां शास्त्राणां (वेदानां) योनिः-कारणमिति शास्त्रयोनिः । शास्त्रयोनेर्भावः शास्त्रयोनित्वम्, तस्मात् शास्त्रयोनित्वात् ।

अथवा शास्ति तत्त्वं विज्ञापयति, शास्त्रं वेदः, परमप्रमाणरूपेण योनिः कारणमिति शास्त्रयोनिः, तस्माच्छास्त्रयोनित्वात् । वेदः कर्त्तव्याकर्त्तव्यधर्माधर्मस्वरूपपरिचायकः । अतएव स मान्यः पूज्यश्च । तस्यापि कारणत्वात् ब्रह्मणः सर्वाधिकं महत्त्वम् । अतएव ब्रह्मजिज्ञासा समारब्धा । ब्रह्मणो जिज्ञास्यत्वमिति द्वितीयो हेतुः । प्रथमो हेतुर्द्वितीयेन सूत्रेणोक्तो जगज्जन्मादिहेतुरूपः । यतस्तद्ब्रह्म जगतो जन्मस्थितिप्रलयानां हेतु ततस्तज्जिज्ञास्यमिति भावः। महोपकारसाधनानां वेदानां योनिर्ब्रह्मैवेति तज्जिज्ञास्यमेव।

अथवा शास्त्रं योनिः प्रमाणं यस्सत्वे तच्छास्त्रयोनिर्ब्रह्म । शास्त्रप्रमाणकत्वाज्जगज्जन्मादिकारणत्वं ब्रह्मण्यास्थीयते इति । शास्त्रमन्तरेण नहि ब्रह्मणोऽस्तित्वे किमपि प्रमाणम् । अतो ब्रह्मणो जगत्कारणत्वे वेदानुशासननेव प्रमाणं भवितुमर्हति । तच्च 'यतो भूमिं जनयन्विश्वकर्मा (शु०य० १७।१८) द्यावाभूमी जनयन्देव एकः (शु० य० १७।१९) हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् । स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ।। (शु० य० १३।४) यत्र विश्वं

भवत्येकनीडम्' इत्यादि वेदमन्त्रेषु बहुविधं विश्वस्य जनकत्वं ब्रह्मैव प्रतिपादितम् । इति जन्माद्यधिकरणम् समाप्तम् ।

(शास्त्रयोनित्वात् १।१।३)

वेदों में ब्रह्म के जगत् का कारण कहा गया है, इसलिये 'शास्त्रयोनित्वात्' इस सूत्र का औचित्य ही है ।

इस वचन की व्याख्या में कहा जा रहा है–जिस प्रकार तैत्तिरीय श्रुति में **"सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म"** अर्थात् सत्य, ज्ञान और अनन्तता ब्रह्म का लक्षण कहा गया है, यही लक्षण सभी वेदों, उपनिषदों में उपलब्ध है । ठीक इसी प्रकार ब्रह्म जगत् का कारण कहा गया है । अतः पूर्व सूत्र के अनुसार जगत् के जन्मादि का कारण परमेश्वर को कहना सर्वथा उचित है ।

शासु अनुशिष्टौ धातु से **"शास्ते अनुशास्ति वा"** इस अर्थ में शास्त्र शब्द की सिद्धि होती है । अर्थात् जो अनुशासित रहते हुये अनुशासन करता है वह शास्त्र है । शास्त्र है योनि अर्थात् कारण जिसका, वह शास्त्रयोनि है । शास्त्रयोनि का भाव शास्त्रयोनित्व है । जगत् के जन्मादि का कारण ब्रह्म है इस कथन में शास्त्र ही प्रमाण है । शास्त्र ही शासन है, और वह वेद है, यह अर्थ निश्चित हुआ ।

दूसरा अर्थ है–मानव धर्म को जो शासित करे, वह शास्त्र [वेद] है । जो शास्त्रों [वेदों] की योनि [कारण] है, वह शास्त्र योनि है । अथवा जो तत्त्व का विशेष ज्ञान करावे वह शास्त्र है, अथवा परम प्रमाण रूप से योनि [कारण] शास्त्र हैं अतः शास्त्रयोनि कहा गया है ।

कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य तथा धर्म और अधर्म के स्वरूप का परिचायक वेद है, इस कारण वह मान्य और पूज्य है । उस शास्त्र के कारण होने से ब्रह्म का सर्वाधिक महत्व है, अत: ब्रह्म-जिज्ञासा का आरम्भ हुआ । ब्रह्मजिज्ञासा के योग्य है, यह द्वितीय हेतु है । जगत् के जन्मादि हेतु रूप प्रथम हेतु द्वितीय सूत्र द्वारा कहा गया । क्योंकि ब्रह्म जगत् के जन्म आदि का हेतु है, वह ब्रह्मजिज्ञासा के योग्य है । उपकार के साधन वेदों का कारण ब्रह्म ही है अत: उसकी जिज्ञासा अवश्य करनी चाहिये।

अथवा जिनकी विद्यमानता में शास्त्र प्रमाण है, वह शास्त्र-योनि है । शास्त्र प्रमाण से सिद्ध और जगज्जन्मादि के कारण होने से ब्रह्म में आस्था स्थित होती है । शास्त्र प्रमाण के बिना ब्रह्मके अस्तित्वमें कोई प्रमाण नहीं है। अत: ब्रह्म के जगत्कारणत्व में वेदानुशासन ही प्रमाण होने की योग्यता रखते हैं । यथा-**(यतो भूमिम्० शु०य० १७।१८)** जिससे विश्वकर्मा ने पृथिवी को उत्पन्न किया । **द्यावाभूमी जनयन् देव एकः (शु०य०१७।१९)** ज्योतिः स्वरूप अद्वितीय परमेश्वर ने पृथिवी और स्वर्गलोक की रचना की । **(हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे०, शु० य० १३।४)** वह प्रकाश स्वरूप परमात्मा जगत् की उत्पत्ति के पूर्व ही विद्यमान था । यही उत्पन्न होने वाले का पति है । उसी ने इस पृथिवी और द्युलोक को धारण किया । जिसमें विश्व एक नीड (घोसले) की भाँति निवास करता है, इत्यादि वेदमन्त्रों में बहुत प्रकारसे विश्व का जनक ब्रह्म ही है, यह प्रतिपादित है ।

हरिभाष्यम्-

'इयं विसृष्टिर्यत आ बभूव' (ऋ० १०।१२९।७) इत्यत्र परमात्मनः सृष्टिप्रादुर्भावं विभाव्य 'असतः सदजायत (ऋ० १०।७२।२) इत्यत्र चासतः उत्पत्तिं जगतोऽवबोधयामास । इत्यादि वेदमन्त्रानाश्रित्य मानसे उक्तं गोस्वामिपादेन—

अखिल विश्व यह मोर उपाया। सब पर मोहिं बराबरि दाया ॥

केचन मन्यन्ते यद्ब्रह्म विद्या (मोक्षविद्या) मात्रोपनिषत्सूपलभ्यते संहितादिमन्त्रेषु च केवलं कर्मविद्यायाश्चर्चा विद्यते । नास्त्येवं वक्तव्य, उपनिषत्स्वपि कर्मचर्चा, वेदेषु ब्रह्मविद्या च दरीदृश्यते । तत्र जगत्कर्त्ता ब्रह्मैव नान्यः । पूर्वपक्षी आशङ्कते—सृष्टिव्यापारः कश्चिज्जीवोऽपि कर्तुं शक्यते । उत्तरयति-जगत्कर्तृत्व अबाधित-रूपत्वाच्च सम्बधश्च ब्रह्मण्येव भवितुमर्हति, जीवे नहि । किंयत् वेदे उक्तं यत् पृथिव्या धर्त्ता परमात्मैवास्ति सर्वेषु तस्य निवासो वर्तते । सर्वासु प्रजासु असौ श्लाघनीयः । सर्वेषां पदार्थानां परमात्मैव महदधिष्ठाता वर्तते । 'सर्वे पदार्था त्वत् सन्निधावेव । तव माहात्म्यं परं विद्वानेव ज्ञातुं शक्यते । इयमुक्तिः कस्मिं श्चिदपि जीवे न वर्तते । तस्माज्जगतः कर्त्ता धर्त्ता च परमात्मैव ।

भक्तिभूषण भाष्य—

"इयं विसृष्टिः" इस मन्त्र में परमात्मा से सृष्टि का प्रादुर्भाव कहकर "असतः" इत्यादि मन्त्र से असत् रूप जगत् की उत्पत्ति का ज्ञान कराया । इन मन्त्रोंका आश्रय लेकर गोस्वामि-पाद ने श्रीरामचरितमानस में कहा—

अखिल विश्व यह मोरि उपाया। सब पर मोंहि बराबरि दाया॥

कुछ लोग यह मानते हैं कि मोक्ष विद्या–ब्रह्मविद्या मात्र उपनिषदों में उपलब्ध है और संहिता आदि में मात्र कर्मविद्या की चर्चा है, ऐसा नहीं कहना चाहिये। उपनिषदों में कर्मचर्चा और वेद संहिता में ब्रह्म विद्या की भी बहुलता है।

जगत् का कर्ता ब्रह्म ही है, अन्य नहीं। पूर्वपक्षी यहाँ आशंका करता है कि सृष्टि की रचना आदि कार्य कोई जीव भी कर सकता है। उत्तर–अबाधित रूप से जगत् का कर्तृत्व ब्रह्म में ही होने के योग्य है, जीवमें नहीं। क्योंकि वेदमें लिखा है कि पृथिवी का धारण कर्त्ता परमात्मा ही है। सभी प्राणियों में उसका निवास है। सभी प्रजावर्गमें वही श्लाघनीय प्रशंसनीय है। परमात्मा ही सभी पदार्थों का महान् अधिष्ठाता है।

"सभी पदार्थ आपकी सन्निधि में हैं। आपके माहात्म्य को परम विद्वान् ही जान सकता है"। यह कथन किसी जीव के विषय में नहीं है। अतः जगत्का कर्त्ता, धर्त्ता परमात्मा ही है।

❁ अथ समन्वयाधिकरणम् ❁

(तत्तु समन्वयात् १।१।४)

हरिभाष्यम्–सम्यक् अन्वयः समन्वयः। तस्मात् समन्वयात्। एतेन तस्य ब्रह्मणः शास्त्रयोनित्वं समन्वया त्सिद्धं भवति इति सूत्रार्थः। प्रत्यक्षानुमानादि प्रमाणाच्च सिद्धं भवति यदस्य जगतो यथा निमित्तकारणं परब्रह्मपरमेश्वर एवास्ति तथैव सिद्धमस्ति यदस्योपादानमपि तदेव। किंचत् अस्मिन् जगत् व्याप्तमस्ति।

परमेश्वरादस्याणुमात्रमपि न शून्यम् । श्रीकृष्णेन श्रीमद्भगवद्-गीतायामुक्तं यत् सम्पूर्णजड़चेतनेषु नास्ति कोपि यः समुदायेषु नास्ति । यः मदभिन्नोऽस्ति । इदं सम्पूर्णं जगन्मयि एव व्याप्तमस्ति । ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् । इति ।

(तत्तु समन्वयात् १।१।४)

भक्तिभूषणभाष्य–

सम्यक् अन्वय को समन्वय कहते हैं । इस सूत्र से उस ब्रह्म का शास्त्र योनित्व समन्वय से सिद्ध होता है, यह सूत्र का अर्थ है । और प्रत्यक्ष, अनुमान आदि प्रमाणों से सिद्ध होता है कि इस जगत का जैसे निमित्त कारण परब्रह्म परमेश्वर है, उसी प्रकार यह भी सिद्ध है कि इसका उपादान कारण भी वही है । क्योंकि वह संसार में व्याप्त है । परमेश्वर से अणुमात्र भी कुछ शून्य नहीं है । भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है कि सम्पूर्ण जड़-चेतनों में ऐसा कोई नहीं है जो समुदाय (समूह) में न हो । यह मुझसे अभिन्न है । यह सम्पूर्ण जगत् मुझमें ही व्याप्त है । **ईशावास्य०** यह मन्त्र प्रमाण है ।

सम्यक् अयते प्राप्यते इति समन्वयः । सम् उपसर्ग पूर्वक गति अर्थ में अय धातु का प्रयोग है । इससे समन्वय शब्द सिद्ध होता है । ‘प्रत्यक्षानुमानोपमानशब्दाः प्रमाणानि” अर्थात् प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द यही ४ प्रकार के प्रमाण शास्त्रों में कहे गये हैं । इन्हीं प्रमाणों की कसौटी पर जगन्नि-मित्तोपादान कारणत्व ब्रह्म में सिद्ध है ।

प्रत्यक्ष प्रमाण–

इन्द्रियार्थसन्निकर्षजन्यत्वे सति ज्ञानवत्वं प्रत्यक्षत्वम् ।

अर्थात् चक्षु, श्रोत्र आदि इन्द्रिय और उनसे गोचर पदार्थ के संयोग से उत्पन्न ज्ञान को प्रत्यक्ष कहते हैं । चार्वाक प्रत्यक्ष को ही प्रमाण मानते हैं ।

अनुमान प्रमाण–अनुमितिकरणमनुमानम् ।

अनुमिति के करण (असाधारण कारण) को अनुमान कहते हैं । प्रत्यज्ञान के अभाव में अनुमान प्रमाण माना जाता है । वैशेषिक और बौद्ध दर्शन अनुमान को ही प्रमाण मानते हैं । **पर्वतो वह्निमान् धूमत्वात्** धूम दर्शन के कारण पर्वत पर अग्नि का अनुमान होता है क्योंकि जहाँ–जहां धुआँ रहता है, वहाँ-२ अग्नि की व्याप्ति अवश्य होगी ।

उपमान प्रमाण–उपमितिकरणमुपमानम् । उपमिति के करण (असाधारण कारण) को उपमान कहते हैं । जैसा कि **'गौरिव गवयः'** अर्थात् गाय के समान पिण्डवाली नील गाय होती है । ऐसा कहने से ऊँट और अश्व आदि की समानता का निषेध हो जाता है ।

शब्दप्रमाण–आप्तवाक्यं शब्दः । रागद्वेषवशादपि नान्यथावादी यः स आप्तः । आप्त वाक्य को शब्द प्रमाण कहते हैं । आप्त वचन वह है जो राग और द्वेष के वशवर्त्ती होकर भी यथार्थ-भाषी होता है । अतः वेद वचन और आप्तवचन शब्द प्रमाण हैं । सनातन धर्म में इन चारों प्रमाणों की पूर्ण मान्यता है ।

मत्तः परतरं नान्यत् किञ्चिदस्ति धनञ्जय ।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव ॥ (गीता ७।७)

पूर्वसूत्र की विवेचना के अनुसार गीताजी का मन्तव्य है कि ब्रह्म ही अखिल संसार का महाकारण है । जैसे वायु की उत्पत्ति, गति, और लय का स्थान आकाश ही है । इस प्रकार जैसे निमित्तकारण परिवर्तनशील और विनाशशील है, उससे भिन्न उपादान कूटस्थ अविचाली कहा गया है । अर्थात् मूल कारण का न कोई उत्पादक है और न ही संचालक ही । वह सर्वतन्त्र स्वतन्त्र है । आगे कहा गया है— **"वासुदेवः सर्वम्"** अर्थात् वासुदेव भगवान् ही सर्वस्व हैं । जैसे मणियां सूत्र (धागे) में पिरोई जाती हैं । देखने में मणिमाला का ही दर्शन होता है । सूत्र उस सबके अन्दर व्याप्त रहता है । सूत्र के बिना जैसे मणिमाला का कोई अस्तित्व नहीं उसी प्रकार सर्वकारणभूत वासुदेव भगवान् के बिना सृष्टि आदि का कोई अस्तित्व नहीं है । आगे श्लोक ८ से १२ तक विभूतियोग में भगवान् सर्वत्र व्याप्त हैं कि– "मैं जलों में रस हूँ । चन्द्रमा और सूर्य में मैं प्रकाश हूँ । सम्पूर्ण वेदों में ॐकार हूँ । आकाश में शब्द हूँ । मनुष्यों में मैं पुरुषार्थ हूँ । पृथिवी में मैं पवित्र गन्ध हूं । अग्नि में मैं तेज हूँ । मैं ही सम्पूर्ण प्राणियों में जीवनी शक्ति हूं । तपस्वियों में तपः शक्ति हूं । सम्पूर्ण प्राणियों का अनादि मुझे ही जानो । मैं बुद्धिमानों में बुद्धि और तेजस्वियों में तेज हूं । काम और रागद्वेष आदि से रहित मैं बलवानों में बल हूं ।

धर्म से युक्त काम मैं ही हूँ। सात्त्विक, राजस और तामसगुण मुझसे ही उत्पन्न होते हैं किन्तु त्रिगुणातीत होने के कारण उसमें लिप्त नहीं होता, तथा वे भी मेरे समीप नहीं रह सकते। यह अनन्य भक्तियोग की आधारशिला है।

"ईशावास्यम्०" इत्यादि का यही तात्पर्य है। **"ईशेन आवास्यम्"** इस व्युत्पत्ति के अनुसार सर्वसमर्थ, सर्वेश्वर परमेश्वर के द्वारा यह सब कुछ व्याप्त है। यहाँ तत्त्वत्रय सिद्धान्त को सूत्र रूप में कहा गया है। ईशावास्यम् से ब्रह्मतत्त्व, जगत्याम्-जगत् से प्रकृति [माया] तत्त्व का कथन है। 'भुञ्जीथाः' यहाँ मध्यमपुरुष में आत्मनेपद का प्रयोग हुआ है। यहाँ दासानुदास अल्पसामर्थ्यवान् जीव के लिये सम्बोधन है।

इस प्रकार के तत्त्वत्रय से विशिष्ट ब्रह्म को सम्पूर्ण संसार के जड़ चेतनों में विवेक, वैराग्य की दृष्टि से देखो। इससे मोह (संसार की आसक्ति) दूर होती है। जब प्राणी यह विचार करता है कि इस जीव का स्वरूप क्या है ? तो उसे अपनी सत्ता का भान होता है- **ईशावास्यम्**। अर्थात् यह सब कुछ ईश्वर के नियन्त्रण में है। तो इससे अपने सर्वसमर्थ स्वामी के विषय में सहजजिज्ञासा हो जाती है। पुनः **कस्यस्विद्धनम्** ?

अर्थात् धन किसका है ? उ०-किसी का नहीं। जिसका है, वह साक्षी के रूप में सम्पूर्ण जड़चेतन के मध्य विराजमान रहकर सभी का अनुशासन करता है। यह विरोधी स्वरूप का ज्ञान है। उपाय स्वरूप क्या है ? त्याग पूर्वक अर्थात् भगवत्-स्वरूप-भगवत् प्रसाद समझ कर सांसारिक सम्पदा का भोग

ग्रहण करो। संक्षेप में यही अर्थपंचक है। अर्थात् स्वस्वरूप, परस्वरूप, विरोधिस्वरूप, उपायस्वरूप और प्राप्यस्वरूप के ज्ञान से प्रीति और प्रतीति का विकास होता है, यही ज्ञानयोग तथा उपासना रहस्य है।

हरिभाष्यम्–अबाधितरूपेण च ब्रह्मणि शास्त्र योनित्वस्यान्वयो, यथा–
दिव्यो गन्धर्वो भुवनस्य यस्पतिरेक एक एव नमस्यो विक्ष्वीड्यः।
तं त्वा यौमि ब्रह्मणा दिव्यदेव नमस्ते अस्तु दिवि ते सधस्थम् ॥
(अथर्व० २।२।१)

विश्वम्भर विश्वेन मा भरसा पाहि स्वाहा। (अथर्व० २।१६।५)
तेजोसि तेजो मयि धेहि। वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि। बलमसि बलं मयि धेहि। ओजोस्योजो मयि धेहि। मन्युरसि मन्युं मयि धेहि। सहोसि सहो मयि धेहि। (शुक्ल यजु० १९।९)

ओजस्योजो मयि दाः स्वाहा। सहोसि सहो मयि दाः स्वाहा। बलमसि बलं मयि दाः स्वाहा। आयुरस्यायुर्मे दाः स्वाहा। श्रोत्रमसि श्रोत्रं मे दाः स्वाहा। चक्षुरसि चक्षुर्मे दाः स्वाहा। परिपाणमसि परिपाणं मे दाः स्वाहा। (अथर्व० २।१७।१–७)

बृहन्नेषामधिष्ठातान्तिकादिव पश्यति। यस्तायन्मन्यते चरन् सर्वं देवा इदं विदुः। (अथर्व० ४।१६।१)

इत्यादिषु संहिता श्रुतिषु समर्थितानि जगदेकपतित्व–सर्वनमस्कारत्व–विश्वम्भरत्व--तेजोवीर्यौजोबलमन्युसहस्स्वरूपत्व सर्वदेव–दृश्यत्व–सर्वव्यापकत्वादीनि न कस्मिंश्चित् सामान्येऽसामान्ये वा सांसारिकेऽसांसारिके वा चेतनेऽबाधितरूपेण समनुयन्ति।" (स्वामी भगवदाचार्य)

दिव्यो–दिव्यगुणविशिष्टो, गन्धर्वो–गोः पृथिव्याः धारयिता, यस्त्वं भुवनस्य–त्रिभुवनस्यैक एव सर्वतो नमस्यो–नमस्करणीयो, दिक्षु–प्रजासु, सर्वथेड्यः पतिरसि तं त्वा त्वां ब्रह्मणा वेदवाचा यौमि प्राप्नोमि । वेदं द्वारीकृत्य त्वामुपासनादिभिः प्राप्नोमि इत्यर्थः ।

हे दिव्य देव ! ते नमः तुभ्यं नमोस्तु । दिवि–द्युलोके (दिव्यलोके) दिव्यभावनावन्मनुष्येवा ते सधस्थं–निवास स्थानम् ।

भक्तिभूषणभाष्य–अबाधित रूप से ब्रह्म में शास्त्रयोनित्व का अन्वय है। किञ्चित् उदाहरण इस प्रकार हैं–दिव्य, अलौकिक गुणों से विशिष्ट–संयुक्त तथा पृथिवी को धारण करने वाले जो तुम [परमेश्वर] हो त्रिभुवन के एक ही नमस्कार के योग्य हो। प्रजा में [जीवमात्र] सभी प्रकार से प्रशंसनीय पति (रक्षक-स्वामी) तुम्हीं हो, । इन गुणों से युक्त तुम्हें वेदवाणी से प्राप्त हो रहा हूँ। अर्थात् वेदज्ञान द्वारा उपासना आदि के साधन से तुम्हें प्राप्त होता हूँ । दिव्यलोक अथवा दिव्य भावनाओंसे संयुक्त मनुष्योंमें आपका निवास स्थान है, अतः हे दिव्य देव ! मैं आपको प्रणाम करता हूँ ।

हे विश्व के योगक्षेम के आधार ! स्वामी श्रीरामभद्र ! आप अपने समस्त प्रकार के पोषणरूप सामर्थ्य द्वारा [लोक-परलोक में] मेरी रक्षा करो ।

आप तेजः [प्रकाश] स्वरूप हैं, वीर्यस्वरूप [अन्तःकरण सामर्थ्यवान्] हैं । बलस्वरूप [प्राणशक्ति] हैं । दुर्धर्षणीय काम,

क्रोध आदि दुष्टराक्षसों के संहारक ओजः स्वरूप हैं। दुष्टों के दमन के लिये आप क्रोध स्वरूप हैं। सभी विघ्नों के विनाशक हैं। अथवा आप सहनशील शिखामणि हैं। इस प्रकार आप तेज, वीर्य, बल, ओज, क्रोध सहनशीलता आदि गुणों के धर्म-प्रभावों को मुझमें धारण करायें। चौथे मन्त्र की व्याख्या तृतीय मन्त्र में आ गयी है।

पाँचवें मन्त्र की व्याख्या—एकपाद् विभूति के भूत और भविष्य में उत्पन्न होने वाले सभी पदार्थों का वह परमात्मा महान् अधिष्ठाता अर्थात् अध्यक्ष है। वह दृश्य अथवा अदृश्य सभी वस्तुओं को अत्यन्त समीपस्थ की भाँति देखता है कि जैसे कोई द्रष्टा दृश्य को देखता है। अतः यह जगत् दृश्य है और ईश्वर द्रष्टा है। तथा च "तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्" इस श्रुति के अनुसार जगत् का विस्तार करते हुए ब्रह्म उसमें विचरण करता रहता है। यहाँ **देवाः** का अर्थ स्वामी भगवदाचार्यजी महाराज ने **विद्वाँसः** किया है। यथा—**इदं सर्वं ब्रह्ममाहात्म्यं देवा विद्वाँस एव विदुः संविद्रते नेतरे जनाः साधारणमनुया इत्यर्थः।**

अर्थात् इन सभी ब्रह्म के माहात्म्य को विद्वान् ही जानते हैं अन्य संकुचित हृदय वाले साधारण मनुष्य नहीं जान सकते। वेदावतार श्रीमद्वाल्मीकि रामायण में तपोधन—महर्षिश्रेष्ठ श्री-वाल्मीकिजी ने श्रोत्रिय और अनन्य ब्रह्मनिष्ठ देवर्षि श्रीनारद जी से ब्रह्मजिज्ञासा की है। उस जिज्ञास्य ब्रह्म को नर शब्द से सम्बोधित किया है। इसका कारण यही है कि ब्रह्मरूप श्रीराम

अत्यन्त दुर्लभ हैं। वह अनुभूति और वेदान्तज्ञान से क्वचित् और घुणाक्षरन्याय से किञ्चिन्मात्र क्षण के लिये हृदय में आ सकते हैं। मृत्युलोक के प्राणी विषयी और छिद्रान्वेषी तथा अल्प-शक्तिमान् हैं, अतः उस दिव्य शक्ति विशिष्ट ऐश्वर्यवान् परमात्मा की कृपा का साँगोपाङ्ग अनुभव कैसे कर सकते हैं। अतः हे मुने ! आप तदवदर्शी हैं। पुनश्च भगवद्भजन-कीर्तन के प्रभाव से आप सदंय और सहृदय हैं। आप ब्रह्मलोक तक निरन्तर भ्रमण करते रहते हैं, इसलिये आपको देशकाल का भी पूर्ण अनुभव भी प्राप्त है। आपने ब्रह्मतत्त्व का साक्षात् दर्शन किया है, तो हे गुरुदेव ! क्या नर रूप में भी कोई ऐसा तत्त्व है ? जो इस लोक के प्रभाव से कभी आसक्त न हुआ हो। जो तीनों कालों (भूत, वर्तमान और भविष्य) में भी सम्पूर्णलोकों का शाश्वत शासक रहा हो। अपनी मृदुता, मधुरता, दया, कृपा, क्षमा, धैर्य, बल और प्रताप से सभी लोकों का उपकार करता हो। क्या श्रुतियों को प्रार्थना के अनुसार उसने किसी को कृपा पूर्वक अपने, प्रकाश, ओज और बल आदि को प्रदान किया है? यदि ऐसा परमार्थी कोई महापुरुष इस लोक में है तो मुझे भी उपदेश दीजिये।

कोन्वस्मिन् साम्प्रतं लोके गुणवान् कश्च वीर्यवान्।
धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च सत्यवाक्यो दृढव्रतः ॥
चारित्रेण च को युक्तः सर्वभूतेषु को हितः।
विद्वान् कः कः समर्थश्च कश्चैकप्रियदर्शनः ॥

आत्मवान् को जितक्रोधः द्युतिमान् कोऽनसूयकः ।
कस्य बिभ्यति देवाश्च जातरोषस्य संयुगे ।।
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं परम कौतूहलं च मे ।
महर्षे ! त्वं समर्थोसि ज्ञातुमेवंविधं नरम् ।।

श्रीविष्णुसहस्रनाम में श्रीमच्छंकराचार्यजी ने नर का अर्थ परमात्मा कहा है । अतः शाश्वत परमात्मा नर पद का वाचक है ।

नरतीति नरः प्रोक्तः परमात्मा सनातनः ।

यहाँ **साम्प्रतम्** का अर्थ श्रीवैष्णवाचार्यों ने यह किया है कि जो तीनों लोकों और तीनों काल में वर्तमान-विराजमान है । **अस्मिन् लोके साम्प्रतम्**–'अस्मिन्' यह तत् पद से सम्बोधित सप्तम्यन्त सर्वनाम विशेष तात्पर्य कहता है । अस्मिन् अर्थात् एकपाद्विभूति में । ब्रह्म चतुष्पाद् है । यजुर्वेद के पुरुषसूत्र में उसी का विभाग है । वह एकपाद्विभूति और त्रिपाद्विभूति है । अर्थात् तीनों काल में जितना जगत् है उतना सब कुछ इस पुरुष की महिमा है । एक प्रकार का विशेष सामर्थ्य है । वह इस सबसे भी अधिक महिमावान् है । एकपाद्विभूति में सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड समूह के चराचर जीव हैं और त्रिपाद् विभूति में वह स्वराट् है । स्वयं विराजमान है ।

एतावानस्य महिमातो ज्यायाँश्च पूरुषः ।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ।।

त्रिपाद्विभूतिस्थ ब्रह्म के विषय में प्रायः सभी आस्तिक दर्शन एकमत हैं चाहे वे निर्गुण-निराकारवादी हों अथवा सगुण

साकार ब्रह्मवादी हों अथवा उभयपक्षीय हों। इस एकपाद्‌विभूति के विषय में अवतारवाद में मत वैभिन्य हो जाता है।

शांकरदर्शन में अवतारवाद मायिक अर्थात् मायाकृत और मायाकृत सहचर है। एकपाद्‌विभूति माया अर्थात् ब्रह्मविकार है। अतः विष्णु, इन्द्रादि देव, तथा श्रीराम–कृष्णादिक अवतार पशु, पक्षी आदि अवास्तविक हैं, व्यावहारिक हैं। वास्तविक सजातीयविजातीय–स्वगतभेद शून्य है। नाम रूप आदि सब कल्पना है, आदि।

श्रीवैष्णव महाभागवतजनों को इस एकाङ्गी सिद्धान्त से बहुत क्षोभ उत्पन्न हुआ। श्रीरामानुजीय आचार्यो ने तो शंकराचार्यजी को "प्रच्छन्न बौद्ध" तक कह दिया। वस्तुतः ब्रह्म को श्रुतियों ने निरुपाधिक और सोपाधिक उभयविध कहा है। निरुपाधिक ब्रह्म कारणावस्थापन्न है और सोपाधिक ब्रह्म कार्यावस्थापन्न है। कारण के गुण कार्य में अवश्य आते हैं। जो सत्व कारण में होता है, वही कार्यरूप में परिणत होता है। यह जीव जगत् ब्रह्म का विकार नहीं अपितु गुण है। यह जो अचिन्त्यमाया है,शास्त्रों में इसके दो रूप कहे गये हैं–विद्या और अविद्या। अविद्या से संसार मन में बसता है, इन पदार्थो के सेवनसे जीव आसक्ति के बन्धन में बँध जाता है। इस कारण वह अपने को ही कर्त्ता और भोक्ता मान लेता है। जिसका परिणाम यह होता है कि उसे अनेक सुख–दुःख, हानि–लाभ, जीवन–मरण और मान-अपमान आदि भोगना पड़ता है। इस अविद्या के परिणाम

से जीव संसारी कहा जाता है। दूसरे प्रकार की माया जो विद्या स्वरूपा है, उसके आश्रय से जीव स्वस्वरूप का ज्ञान कर लेता है अथवा वह स्वयं अपनी कृपा--शक्ति द्वारा जीव के मायिक बन्धन काट देती है। इस अर्थ में माया का अर्थ कृपा है। 'माया दम्भे कृपायां च' इत्यमरः। इसकी ही कृपा से परस्वरूप का भी ज्ञान हो जाता है। प्रमाण यथा—

विद्याञ्चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते ॥ (यजु० ४०।१८)

अविद्या ही मृत्यु है और विद्या ही अमृतत्त्व है। अविद्या—

मैं अरु मोर तोर तैं माया। जेहि बस कीन्हें जीव निकाया ॥
गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानेहु भाई ॥
तेहि कर भेद सुनहु तुम्ह सोऊ। विद्या अपर अविद्या दोऊ ॥
एक दुष्ट अतिशय दुखरूपा। जा बस जीव परा भवकूपा ॥
विद्या-एक रचइ जग गुन बस जाके। प्रभु प्रेरित नहिं निज बल ताके।

इसी विद्या को सीतातत्त्व कहा गया है। यह जगत् की मूलाधिष्ठात्री हैं जो जीवों को भगवान् के कैंकर्य और श्रीराम की शरणागति का ज्ञान कराती हैं। यथा—

बाम भाग सोभति अनुकूला। आदिशक्ति छविनिधि जगमूला ॥
जासु अंस उपजहिं गुनखानी। अगनित लच्छि उमा ब्रह्मानी ॥
भृकुटि विलास जासु जग होई। राम बाम दिसि सीता सोई ॥

भगवान् माया और जीव दोनों का पोषण करते हैं। जब जीव माया (विद्या) रूपासीता का आश्रय प्राप्त करता है तो

वह अपने सहित उसे भगवान् के कैंकर्य में लगा देती है। बन पथ में यह अनुपम दृश्य गोस्वामीजी महाराज ने देखा—

आगे राम लखन पुनि पाछे। तापस वेष विराजत काछे॥
उभय बीच सिय सोहति कैसी। ब्रह्म जीव बिच माया जैसी॥

आश्रम का दृश्य—

सेवहिं लखन सीय रघुबीरहिं। जिमि अबिवेकी पुरुष सरीरहिं॥

यहाँ जिमि अविवेकी इत्यादि की आधी चौपाई में चार्वाक मत का खण्डन हो गया। भगवान् अपने आश्रितों का पालन कैसे करते हैं, इसका एक उदाहरण—

सीय लखन जेहि बिधि सुख लहहीं।
सोइ रघुनाथ करहिं सोइ कहहीं॥ तथा—
जोगवहिं प्रभु सिय लखनहिं कैसे। पलक बिलोचन गोलक जैसे॥

इस प्रकार एकपाद् विभूति में स्थित इस मृत्युलोक की अवास्तविक अविद्या माया से विलक्षण मर्यादापुरुषोत्तम ब्रह्म श्रीरामतत्त्व हैं, यह सिद्ध हुआ। महर्षि वाल्मीकि जी की इस जिज्ञासा का समाधान देवर्षि करते हैं—

बहवो दुर्लभाश्चैव ये त्वया कीर्तिता गुणाः।
मुने वक्ष्याम्यहं बुद्ध्वा तैर्युक्तः श्रूयतां नरः॥

× × ×

स च सर्वगुणोपेतः कौशल्यानन्दवर्धनः।
समुद्र इव गाम्भीर्ये धैर्येण हिमवानिव॥
विष्णुना सदृशो वीर्ये सोमवत्प्रियदर्शनः।
कालाग्निसदृशः क्रोधे क्षमया पृथिवीसमः॥

धनदेन समस्त्यागे सत्ये धर्म इवापरः । वा०रा० १।१।७-१८½

हे मुने ! आपने जिन बहुत से दुर्लभ गुणों का कीर्तन किया है, (वेदान्तज्ञान और लोकानुभव से) उसे मैं विचार कर वर्णन करता हूं । अनेक गुणों के वर्णन-पूर्वक देवर्षि कहते हैं-वह कौशल्यानन्दवर्धन श्रीरामभद्र सभी गुणों से सम्पन्न हैं । गम्भीरता में समुद्र के समान हैं । हिमालय के समान उनका धैर्य है । वीर्य अर्थात् पराक्रम में विष्णु के समान हैं । चन्द्र के समान वे श्रीरामचन्द्रजी प्रियदर्शन हैं । क्रोध में कालाग्नि (प्रलयाग्नि) के समान हैं । क्षमागुण में पृथिवी के समान हैं । त्याग में कुबेर के समान और सत्य में साक्षात् धर्म हैं । इसी सूत्रात्मकतत्त्व का वर्णन श्रीरामचरित्र में साङ्गोपाङ्ग प्राप्त होता है । इन्हीं गुणों के कारण श्रीरामजी समस्त प्राणियों का पालन करते हैं ।

विष्णुना सदृशो वीर्ये-वेदों में श्रीविष्णु का पराक्रम प्रसिद्ध है । उन्होंने पृथिवी आदि तीनों लोकों के अभिमानी देवता अग्नि वायु, आदित्य आदि रञ्जनात्मक रजस् की सृष्टि की है । वह कण-कण में विराजमान हैं, अतः विष्णु कहे गये-**वेवेष्टि व्याप्नोति इति विष्णुः** । विष्लृ व्याप्तौ धातु से विष्णु शब्द की निष्पत्ति होती है ।

ऋग्वेद के अनेक मन्त्रों में तीन पद विन्यास का वर्णन विष्णु भगवान् के लिये आता है । वे इस एकपाद् विभूति के संचालक भी हैं, ऐसा वेदों ने कहा है । इसलिये पालनकर्त्ता

हैं । अतएव मानबरूप श्रीराम की तुलना विष्णु के पराक्रमसे की गयी है, क्योंकि लोक की तुलना लोक से हीं की जाती है । यहाँ यह तुलना पराक्रम में हीं ग्राह्य है, अन्य में नहीं । श्रीराम रूप विष्णु पुनः पुनः असुरों से देवताओं की रक्षा करते हैं । ब्रह्मा, शिव, इन्द्र आदि ईश्वर कोटि के देववृन्द अहर्निश इनकी सेवा में तत्पर रहते हैं । अतः वेदों ने वीर्यरूप में श्रीविष्णु की प्रार्थना की है—

विष्णोर्नुकं वीर्याणि प्रवोचं यः पार्थिवानि विममे रजांसि ।
यो अस्कभायदुत्तरं सधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायः ।।
(ऋ०म० १, सूक्त १५४)

इस प्रकार वेदों की सम्पूर्ण स्तुति श्रीरामपरक है । सभी देवशक्तियाँ श्रीरामभद्र के शतशः कोटिकलांश हैं । यथा--काकर्षिजी श्रीभुशुंडीजी से कहते हैं–यह सब मैं निज नयनन्ह देखी ।
महिमा नाम रूप गुन गाथा । सकल अमित अनंत रघुनाथा ।।
निज निज मति मुनि हरि गुन गावहिं ।
निगम शेष शिव पार न पावहिं ।।
तुम्हहिं आदि खग मसक प्रजंता । नभ उड़ाहिं नहि पावहिं अन्ता ।।
तिमि रघुपति महिमा अवगाहा । तात कबहुँ कोउ पाव कि थाहा ।
राम काम सत कोटि सुभग तन । दुर्गा कोटि अमित अरि मर्दन ।।
सक्र कोटि सत सरिस बिलासा । नभ सत कोटि अमित अवकासा ।।
मरुत कोटि सत विपुल बल रवि सत कोटि प्रकास ।
ससि सतकोटि सुसीतल समन सकल भवत्रास ।।

काल कोटि सत सरिस अति दुस्तर दुर्ग दुरन्त ।
धूमकेतु सत कोटि सम दुराधरष भगवन्त ॥
प्रभु अगाध सत कोटि पताला । समन कोटि सत सरिस कराला ॥
तीरथ अमित कोटि सत पावन । नाम अखिल अघपूग नसावन ॥
हिमगिरि कोटि अचल रघुवीरा । सिन्धु कोटि सत सम गम्भीरा ॥
कामधेनु सत कोटि समाना । सकल कामदायक भगवाना ॥
सारद कोटि अमित चतुराई । विधि सतकोटि सृष्टि निपुनाई ॥
विष्णु कोटि सम पालन कर्त्ता । रुद्र कोटि सत सम संहर्त्ता ॥
धनद कोटि सत सम धनवाना । माया कोटि प्रपंच निधाना ॥
भार धरन सत कोटि अहीसा । निरवधि निरुपम प्रभु जगदीसा ॥

इस प्रकार वेद ऋचाओं और रामायण की समीक्षा से श्रीरामपरत्व का समन्वय सिद्ध होता है । श्रीरामरूप परात्पर ब्रह्म का उपमान कोई नहीं है, यदि है तो कथन मात्र के लिये ही । वैदिक प्रतिज्ञा स्मरण करते हुये गोस्वामीजी महाराज आगे अनुग्रह करते हैं—

निरुपम न उपमा आन राम समान राम निगम कहैं ।
जिमि कोटि सत खद्योत सम रवि कहत अति लघुता लहै ॥

हरिभाष्यम्—आशङ्कते अत्र जगत्कर्त्ता कश्चिन्नास्ति । दृश्यते हि घटस्य निर्माता तस्यापि कश्चिज्जनकस्तस्याप्यपरः । अनादिकालादियं परम्परा प्रचलति । यद्यस्ति ब्रह्मपदवाच्यो नित्यस्तर्हि कथन्न निखिलं जगदिदं नित्यम् ? यदि स स्वयम्भूर्जगतोऽपि कथन्न तथात्वम् । जगति दृश्यते प्रतिक्षणं परिवर्त्तनम्, एतस्मान्नित्यं नास्ति ।

विकारश्चापि प्रत्यक्ष एव चराचरस्वरूपः। एवञ्च निर्विकारता प्रसाधनेन ब्रह्म प्रसाधयितुं तत्सत्तां साधयितुञ्च साधनाभावः स्पष्टं स्फुरति।

यहाँ पूर्वपक्षी आशंका करता है कि जगत् का कर्त्ता कोई नहीं है। देखा जाता है कि घट का निर्माता कुलाल (कुम्भकार) है और उसका भी निर्माता कोई और है। अनादिकाल से ऐसी परम्परा चली आ रही है। यदि ब्रह्मपदवाच्य कोई नित्यतत्व है तो यह सम्पूर्ण जगत् नित्य क्यों नही है? यदि वह स्वयम्भू है तो जगत् भी क्यों नहीं वैसा है। जगत् में प्रतिक्षण परिवर्तन देखा जा रहा है, अतः वह ब्रह्म नित्य नहीं है। और इस प्रकार निर्विकारता प्रसाधन द्वारा ब्रह्म सिद्धि करने के लिये साधनों का अभाव स्पष्ट है।

"न च न स्तो वस्तुतो जीवेश्वरौ ब्रह्मविकृतिपरिचायकौ येन ब्रह्मविकारमालम्बेत्,कल्पितौ एव तौ। कल्पना च निराधारा क्वापि न भवति। तदेवाश्रयं मायाच्छायाविरहितं सर्वद्वन्द्वातीतं ब्रह्मेति च। इदमपि सुष्ठु नास्ति। न निरधिष्ठाना कल्पना सत्तामधितनुत इति क्वावलोकितम्? रज्जुसर्पं इति चेद् बाढम्। समानेऽधिष्ठाने हि सा कल्पना नासमाने। नहि रज्जौ केनापि कुत्रापि सिंहभ्रमोऽभिभूतः। न वा कदाचित् कस्यचिच्चूते रजत-भ्रान्तिः। जड एव सा जडभ्रान्तिः। असमानं हि ब्रह्म चेतनं चापि। सर्वथासमाने तस्मिश्चेतने न स्यादसमानानां घटपटा-दीनामचेतनानां भ्रमः। एवञ्च नास्ति कश्चित् समन्वयः। कथं तर्हि प्रस्तुत सूत्रस्य चारितार्थ्यं समर्थनीयम्?

वस्तुत: जीव और ईश्वर ब्रह्म की विकृति के परिचायक नहीं हैं, ऐसा नहीं कहा जा सकता है। इससे तो ब्रह्म विकारी सिद्ध हो सकता है। तो इन दोनों को कल्पित कहा जाये। वह कल्पना भी निराधार कभी नहीं होती। उस कल्पना का आश्रय माया की छाया से विरहित और सभी द्वन्द्व (हलचल) से अलग ब्रह्म है। पुन: पूर्वपक्षी कहता है– यह भी समाधान समीचीन नहीं है। निरधिष्ठाना कल्पना ब्रह्मसत्ता के आधार पर विकसित होती है, इसे किसने देखा ? यदि रज्जु और सर्प की भाँति कहते हो तो ठीक है। समान अधिष्ठान में वह कल्पना होती है, असमान में नहीं। किसी ने कहीं भी रज्जु (रस्सी) में सिंह का भ्रम नहीं किया। अथवा कभी किसी को आम्रफल में रजत की भ्रान्ति नहीं हुई है। जड में ही वह जडभ्रान्ति होती है। यहाँ तो ब्रह्म और चेतन असमान है। सर्वथा उस समान चेतन में असमान घट, पट आदि अचेतन का भ्रम नहीं होना चाहिये। इस प्रकार कोई समन्वय ही नहीं है। तो कैसे प्रस्तुत सूत्र की चरितार्थता का समर्थन किया जाये ?

"तथा च "संज्ञाकर्मत्वस्मद्विशिष्टानां लिङ्गम्" प्रत्यक्षप्रवृत्तत्वात् संज्ञाकर्मण:। [वैशेषिक दर्शन २।१।१८-१९] इति सूत्राभ्यां संज्ञाकर्मदर्शनादीश्वरसिद्धिरिति प्रथमं विचार्यते। अग्निवाय्वा-दित्यादीनामनन्तानां पदार्थानां व्यवह्रियमाणानि नामानि न मनुष्यकल्पितानि भवितुमर्हन्ति। अल्पज्ञतयाल्पशक्तितया च साकल्येन पदार्थज्ञाने मनुष्याणामसामर्थ्यम्। पदार्थज्ञानाभावे

नामधेयानारम्भः स्यादित्यादि यदुक्तं तन्न विचारसहम् । न हि वेदेषु क्वाप्युक्तमेतेन शब्देनायमर्थो गृहीतव्य इति । "अग्निमीडे" इत्यादिना नहि ज्वलत्पावकस्याग्निरिति संज्ञा वेदितव्येति अभिहितम् । सिद्धानुवाद एव सः । "अस्ति कश्चित् पूर्वसिद्धोऽनादिकालतः प्रख्यातश्चाग्निदेवस्तमीडे" इत्येव तस्यार्थः ।

परस्सहस्राणां पदार्थानां संज्ञा नोपलभ्यन्ते वेदेषु । सम्पादिताश्च ता आवरकालिकैरनुभवविभिर्विद्वद्भिः आम्रनिम्बजम्बुकजम्बीरबदरिकादीनामनेकेषां पदार्थानामपि नामानि नावेक्ष्यन्ते तत्र । यच्चाश्वमेध राजसूयादीनां कर्मणां नामानि श्रूयन्ते न तानीश्वरेण दत्तानि,दत्तानि च तानि स्मृत्यादिग्रन्थ प्रणेतृभिर्याज्ञवल्क्यादिमहर्षिभिः कर्मठशिरोमणिभिः । अनेकेषां कृमि–कीट पतङ्गादीनां नक्षत्राणां देवयोनीनां गन्धर्वादीनामभिधानानि न श्रूयन्ते वेदेषु । पश्चाद्व्यवहारिभिर्मनुष्यैरेव तानि सर्वाणि नामान्यकल्प्यन्त । अधुनापि विभिन्नशस्त्रास्त्रादीनां प्रत्यक्षमभिधानानि संस्कुर्वाणा मनुष्या दृश्यन्ते । एवञ्च संज्ञाकर्मणी ईश्वरसाधिके ।"

–स्वामी भगवदाचार्यकृत वैदिकभाष्यम्

अब "संज्ञाकर्म०" और 'प्रत्यक्षप्रवृत्तत्वात्' इन वैशेषिक दर्शन के सूत्रों द्वारा ईश्वरसिद्धि पर प्रथम विचार प्रारम्भ करते हैं । वह यह है कि ब्रह्म की संज्ञा और कर्म के दर्शन से ईश्वर का अस्तित्त्व निश्चित होता है । उदाहरण रूप में कहते है–"अग्नि, वायु और आदित्य अनन्त पदार्थों के व्यवह्रियमान [व्यवहार में आने वाले] मनुष्यों द्वारा कल्पित नहीं हो सकते ।

मनुष्य में अल्पज्ञान और अल्पसामर्थ्य होने से पदार्थज्ञानकी शक्ति सह्य नहीं है।" पुनः पूर्वपक्ष का उपस्थापन करते हुये पण्डितराज श्रीस्वामीजी कहते हैं–पदार्थज्ञानके अभावमें नामधेय का अनारम्भ होता है, इत्यादि कथन अविचारित है। क्योंकि वेदों में कहीं भी यह नहीं कहा गया है कि अमुकशब्द से अमुक्त अर्थ ग्रहण करना चाहिये। यथा–"अग्निमीडे पुरोहितम्" इत्यादि मन्त्रों में जलते हुये पावक की अग्नि संज्ञा समझनी चाहिये, यह नहीं कहा गया है। पावक का अग्नि अर्थ यह अनुवाद तो सिद्ध ही है। सत्य तो यह है कि पूर्व में ही सिद्ध कोई अग्निदेवतत्त्व अनादि काल से प्रसिद्ध है, उसी की स्तुति करता हूँ, यह मन्त्रार्थ हुआ। और भी सहस्रों पदार्थों की संज्ञा वेदों में उपलब्ध नहीं है किन्तु वे आधुनिक अनुभवी विद्वानों द्वारा सम्पादित हैं। आम्र, निम्ब, जामुन, नींबू, बदरीफल (बेरफल) आदि अनेक पदार्थों के नाम वेदों में नहीं देखे जाते हैं। और भी, अश्वमेध राजसूय आदि यज्ञकर्मों के नाम वेदों में नहीं सुने जाते हैं। वे ईश्वर प्रदत्त नाम नहीं है, बल्कि स्मृति आदि ग्रन्थोंके प्रणेता याज्ञवल्क्य आदि कर्मठशिरोमणि महर्षियों द्वारा प्रदत्त हैं। अनेक कृमि, कीट, पतङ्गों, नक्षत्रों, देवयोनियों और गन्धर्व आदिकों के नामाभिधान वेदों में नहीं सुने जाते हैं। वेदों के पश्चात् जन्म लेने वाले व्यावहारिक मनुष्यों द्वारा ही वे सभी नाम कल्पित हुये हैं। वर्तमान में भी विभिन्न अस्त्र–शस्त्रों आदि के प्रतिदिन नाम–संस्कार करने वाले मनुष्य ही देखे जाते हैं। अर्थात् आधुनिक

युग में जिन हथियारों के प्रयोग होते हैं, उनके नाम वेदों में नहीं हैं- किन्तु मनुष्य उनका आविष्कार करके अनेक प्रकार से प्रयोग में ला रहा है। इस प्रकार संज्ञा और कर्म से ईश्वरसिद्धि नहीं हो सकती।

"तथापि वेदान्तशास्त्रमिदम्। नात्र भगवान्बादरायणस्तर्कम-शिश्रियत्। न ह्मीश्वरस्तर्कगम्यः। तर्काणां प्राकृतिकेषु पदार्थेष्वेव-गतिर्नाप्राकृतिके पारमार्थिके ब्रह्मणि। किञ्चिदनुमित्सया प्रवृत्तः पुरुषो लिङ्गमेव प्रथमं जिघृक्षति। लिङ्गाभावादनुमित्यभावः। नहि परमात्मानमाश्रयन्तीमनुमितिं दृष्टं लिङ्गं साधयेत्।

दृष्टेन लिङ्गेन दृष्टमेव दृश्यमेव वा सिद्ध्येन्नादृष्टमदृश्यं वा वस्तु। क्षित्यादीनां सकर्तृत्वसाधने जन्यत्वहेतुरेव। न हि क्षित्यादीनां जन्यत्वमद्यापि सिद्धम्। न तार्किकेण जायमानाः क्षित्यादयोऽवलोकिताः। कथं तर्हि तेषां जन्यत्वमूरीकृतम्? **'द्यावाभूमी जनयन्देव एक'** इति श्रुत्यावगतं जन्यत्वं तेषामिति चेच्चिरं जीव। श्रुतिमेव भगवतीं शरणं कुरु।

जन्यघटदृष्टान्तेन जन्यत्वहेतुना कुलालादिवज्जन्य एव कर्त्ता सिद्ध्येदवयवाश्च। न स तवापीष्टः। अद्वैतिमतेमायाकल्पितत्वे-नेश्वरस्य कथञ्चिज्जन्यत्वस्वीकारेऽपि शरीरित्वास्वीकार्यत्वात्। विशिष्टाद्वैतवादिमते शरीरित्वाङ्गीकारेपि ब्रह्मणो जन्यत्वानङ्गी-कार्यत्वात्सर्वैरनुपादेयतया तस्य तर्कस्य सर्वथानुपादेयतयैव सिद्ध्यति। कुसुमाञ्जलिस्थितानुमानप्रयोगा अपि न योगक्षेमवहाः।

यदि ब्रह्माण्डं विनाशिप्रयत्नं प्रयत्नवन्तं चान्तरेणैव विनश्येत्।

पटोपि चिररक्षितो विनश्यत्येव । न हि पटरक्षणं पटविनाशी प्रयत्नः । अनाशाय रक्षितोऽप्यसौ विनाश्यधर्मत्वाद्विनंक्ष्यत्येव । अतो नात्र दर्शने तर्कप्रसरः । शब्दप्रामाणिको हि भगवान्व्यासः । यच्छब्द आह तदेव तस्य प्रमाणम् । [स्वामी भगवदाचार्य]

भक्तिभूषणभाष्य–इसके समाधान में स्वामीजी वेदान्त को परम प्रमाण मानते हुए कह रहे हैं– फिर भी यह वेदान्त शास्त्र है। इन सूत्रों में भगवान् बादरायण ने तर्क को महत्व नहीं दिया है। निश्चित ही ईश्वर तर्क से नहीं जाना जा सकता है। प्राकृत पदार्थों में ही तर्क की गति है,न कि अप्राकृतिक परमार्थिक ब्रह्म में। कुछ जिज्ञासा [अनुमित्सा] को लेकर पुरुष सर्वप्रथम लिंग की ही जिज्ञासा करता है। लिंग के अभाव से अनुमिति का अभाव हैं। **पूर्वपक्ष**–परमात्मा के आश्रय में रहने वाली अनुमिति को दृष्ट लिंग नहीं साधता है।

दृष्ट लिंग द्वारा दृष्ट और दृश्य ही सिद्ध होना चाहिये, अदृष्ट और अदृश्य वस्तु का नहीं। क्षित्यादि के सकर्तृत्व साधना में जन्यत्व हेतु अहेतु ही है। क्योंकि क्षिति आदि का जन्यत्व आज तक नहीं सिद्ध हो सकता है। उत्पन्न होने वाले क्षित्यादि पदार्थ तार्किकों द्वारा नहीं देखे गये। **प्रश्न**– तो कैसे उनका जन्यत्व स्वीकार किया गया ?

समाधान–'द्यावाभूमी' अर्थात् पृथिवी अन्तरिक्ष सभी लोकों का निर्माण एक ही देव ने किया। इत्यादि श्रुतिप्रमाण से उनके जन्यत्व का ज्ञान यदि आपको हो जाता है, तो सौ वर्षों

तक जियो । श्रीभगवती श्रुति का ही शरण ग्रहण करो । जन्यत्व हेतु द्वारा जन्यघट के दृष्टान्त से कुलाल आदि की भाँति जन्य ही कर्त्ता है वह अवयव वाला है यही सिद्ध होता है । किन्तु यह आपको इष्ट नहीं है । अद्वैतवाद में माया-कल्पित ईश्वर का जन्यत्व किसी प्रकार स्वीकार कर लेने पर भी शरीरित्व अस्वीकार्य होने से अनुपपन्न है । विशिष्टाद्वैतवाद में शरीरित्व अङ्गीकार हो जाने पर भी ब्रह्म का जन्यत्व अङ्गीकार न होने से और सभी के द्वारा अनुपादेय होने से वह तर्क सर्वथा अनुपादेय सिद्ध होता है ।

न्यायशास्त्रानुसार कुसुमाञ्जलि में प्रतिपादित अनुमान प्रमाण प्रयोग भी योगक्षेम नहीं वहन कर सकता है ।

यदि ब्रह्माण्ड का प्रयत्न विनाशी है तो भी प्रयत्नवान् के विना ही उसका विनाश हो जाता है । पट भी चिररक्षित होने पर भी अवश्य विनष्ट होता है । पटरक्षण पट विनाशी प्रयत्न नहीं है । नाश न होने के लिये रक्षित वह भी विनाश्यधर्मवान् होने से अवश्य ही विनष्ट होता है । अतः इस वेदान्तदर्शन शास्त्र में तर्क की गति नहीं है । भगवान् श्रीव्यासजी शब्दप्रामाणिक ही हैं। जो शब्द कहता है वही उसका प्रमाण है। **'तर्काप्रतिष्ठानात्'** सूत्र ही है । ब्रह्म के विषय में शब्द ही प्रमाण हैं । तर्क की प्रतिष्ठा नहीं है ।

हरिभाष्यम्—नास्ति कश्चिद्ब्रह्मणो जनकः । "वेदाः प्रमाण"-मिति श्रुतिः । वेदः तस्येश्वरस्यास्तित्त्वं प्रतिपादयति । अत

एवेश्वरस्यैवास्तित्वमस्ति इति निष्प्रपञ्चं सिद्ध्यति। जगद्दृष्ट्वा कर्तृत्वं सिद्ध्यति इतिपूर्वमुक्तम् । गीतायां श्रीकृष्णः स्वयमेवानुग्रहपूर्वकं निजस्वरूपं वर्णयति–

मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्त्तिना ।

मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः ।। (गीता ९।४)

अर्थात् मया निराकारपरमात्मना इदं सर्वं जगत् परिपूर्णमस्ति । सर्वभूतानिमय्येवावस्थितानि । परन्त्वहं नास्मि तेषु । "तदात्मानं स्वमकुरुत" परमात्मा स्वांशेन जगद्रूपो भवति । जड़चेतनरूपेण स्वकीयां कृपां वितनुते । यथा मानसे–

अखिल विश्व यह मोर उपाया । सब पर मोरि बराबरि दाया ।।

इत्थं प्रकारेण वेदान्तवाक्यानां समन्वयः सम्पद्यते । ईश्वरो न्यायी वर्तते । असारे संसारेऽस्मिञ्जीवः स्वकृतं स्वीयोपार्जितं फलं सुखदुःखादिकं भुनक्ति । अत्र कश्चिद् दोषो नास्ति । अनन्तजन्मभ्यः इयमेव परम्परा आगच्छति । वस्तुतो जीवः स्वकर्मफलं भुक्त्वा पूतत्वं याति । परमकारुणिकस्य भगवतो श्रीरामस्य समानादया ह्येषा वर्तते । सर्वमन्यत् कथनं बालसम्मोहनमस्ति ।

कश्चिज्जलेन पञ्चत्वं याति, कश्चित्तेन विना मृतिं याति । कश्चिदग्नौ दाहयित्वा म्रियते । कश्चिच्छुरस्यधारया, भुसुण्डिगोलिकाभिः अन्तकमुपयाति । कश्चिद्रोगातिशयेन त्राहि–त्राहीति करोति । इत्थं सर्वे आधिव्याधिपीडिताः सन्ति । सर्वकर्मफलभोगिनः सन्ति । यद्युपर्युक्ता व्यवस्था परमेश्वरस्य राज्ये भवेत् तर्हि तस्य राज्यस्यान्तो भवतु, इति कथनं न समीचीनम् ।

यदि कर्मफलानुसारी कस्मिंश्चिद्राज्ये प्रजापीडत्वं याति तर्हि राजदोषो भवितु नार्हति । इदं सर्वं ईश्वरेच्छा मन्तव्या। ब्रह्मैव सामान्यानन्दस्य परमानन्दस्यापि प्रदाता, इति दृढं मन्तव्यम् । श्रीरामस्वरूपो ब्रह्म सर्वत्रैव रमते रामयति च । एतस्मादन्वयाद्व्याप्तं ब्रह्मस्वरूपो दृश्यते ।

"सदेव सोम्येदमग्र आसीत्" (छा० ६।२।१) "तदेव ब्रह्मत्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते" (केन उ० १।४) द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्व जाते । तयोरन्यः पिप्पलं स्वादवत्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति ॥ (मु० उ० ३।१।१) तमेव विदित्वातिमृत्युमेति (श्वेत०उ०३।८) ॐ यो ह वै श्रीरामचन्द्रः स भगवानद्वैतपरमानन्दात्मा (रामतापनीय उ०) आनन्दो ब्रह्म० (तै० उ०३।६।१) इत्येवमादयः श्रुतयो ब्रह्मणः लक्षणत्वरूपगुणांश्च प्रतिपादयन्ति । इत्थंमुपक्रमोपसंहाराभ्यां तात्पर्यनिर्णायकलिङ्गभ्यां च परमपुरुषे श्रीरामाख्ये ब्रह्मण्येव समन्वयः ।

तथा च "रामः सत्यं परं ब्रह्म रामात्किञ्चन न विद्यते" इति वचनात् श्रीराममन्त्राचार्येण व्यासेन "तत्तु समन्वयात्" इति सूत्रेण परंब्रह्म–श्रीरामैव प्रतिपाद्यते ।

इत्थमुपासनाविधिप्रतिपादकत्वात् वेदान्तानां ब्रह्मणि समन्वयः स्पष्ट एव ।

समन्वयपदञ्चात्र व्यतिरेकस्याप्युपलक्षणम् । यथा–जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्थे० (श्रीमद्भागवत १।१।१) इति वाक्येन व्यासस्यैव वचनान्तरात् । तस्यार्थः जगत् कारणत्वं ब्रह्मणः

सर्वेषु च व्यापकत्वेन समन्वयात् । "पादोऽस्य विश्वा भूतानि" इति श्रुतिवाक्येन ब्रह्मणः सर्वत्र सर्वज्ञत्वं समन्वय रूपेण ज्ञाप्यते ।

इति श्रीमज्जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामिहर्याचार्य विरचिते हरिभाष्यभासिते ब्रह्मसूत्रे समन्वयाधिकरणे ब्रह्मस्वरूपं समन्वयरूपेण स्थाप्य चतुःसूत्री समाप्ता ।

भक्तिभूषणभाष्य–ब्रह्म का कोई जनक नहीं है। **"वेदाः प्रमाणम्"** यह लोकप्रसिद्ध श्रुति है। वेद उसी ईश्वर के अस्तित्व का प्रतिपादन करते हैं। अतएव ईश्वर का ही अस्तित्व है। जगत् को देखकर कर्तृत्व सिद्ध होता है, यह पूर्व में कहा गया है। श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र स्वयमेव अनुग्रह पूर्वक निज स्वरूप का वर्णन करते हैं–**मया ततमिदम्०** इत्यादि।

अर्थात् मुझ निराकार परमात्मा द्वारा यह सम्पूर्ण जगत् परिपूर्ण है। सभी प्राणी मुझमें ही निवास करते हैं, परन्तु मैं उनमें नहीं हूँ। परमात्मा अपने अंश से जगत् के रूप में होता है। जड़चेतन रूपमें अपनी कृपाका विस्तार करता है। यथा– **अखिल विश्व०** आदि। इस प्रकार वेदान्त का समन्वय सम्पन्न होता है।

ईश्वर न्यायी है। संसार में जीव स्वकृत और स्व–उपार्जित कर्मफलों के (सुखदुःखादि) का भोग करता है। इसमें (परमात्मा का) कोई दोष नहीं है। अनन्त जन्मों से यह परम्परा चली आ रही है। वस्तुतः जीव अपने (अशुभ) कर्मफलों का भोग कर पवित्र हो जाता है। परम कारुणिक भगवान् श्रीराम की यह समान दया है। अन्य सभी कथन बालसम्मोहन है। कोई

जल से मरता है तो कोई उसके विना मृत्यु को प्राप्त होता है। कोई अग्नि में जलकर अथवा जलाकर मरता है तो कोई छूरे और चाकू, बन्दूक की गोली आदि से यमराज के धाम को पधारता है। कोई रोगी रोगों की अधिकता से 'त्राहि-त्राहि' करता है। इस प्रकार प्राणी आधि-व्याधि से पीडित रहते हैं। वे स्वकर्मफल के भोक्ता हैं, (ऐसा समझना चाहिये)।

यदि उपर्युक्त व्यवस्था परमेश्वर के राज्य में है तो उस राज्य का अन्त हो जाना चाहिये, यह कथन समीचीन नहीं है। क्योंकि यदि कर्मफल के अनुसार किसी [राजा] के राज्य में प्रजा पीडित होती है, तो वह राजदोष नहीं हो सकता है। सब कुछ ईश्वर की ही इच्छा माननी चाहिये। ब्रह्म ही सामान्य [लोकिक] सुख, और असामान्य [मोक्ष] सुखों का प्रदाता है, यह दृढ़ मानना चाहिये। श्रीरामस्वरूप ब्रह्म सर्वत्र रमण करता और कराता है। इसलिये अन्वय द्वारा ब्रह्मस्वरूप दृश्य है। ['सदेव०' छा० ६।२।१] सृष्टि के पूर्व सत्य ही था, इससे भिन्न कुछ भी नहीं था। ['तदेव०' केन० १।४] मन आदि के प्रेरक ब्रह्म को तुम [शिष्य] समझो। कामनाओं से व्याकुलचित्त वाले [शिष्यों] जीवों ! तुम ब्रह्म को जानो। चित् और अचित् रूप संसार ब्रह्म नहीं है। [द्वा सुपर्णा० मु० उ० ३।१।१] जीवात्मा और परमात्मारूपी सुन्दर पंखों की उपमा वाले दोनों पक्षियाँ शरीररूप वृक्ष पर समान रूप से साथ ही विराजमान हैं। **समानं ख्यायते इति सखा** अर्थात् जिनकी परस्पर में समान

ख्याति [प्रसिद्धि] है, वह सखा कहलाता है। किन्तु उसमें जीवात्मारूपी पक्षी पिप्पलफल (विषयसुख) का भोक्ता होने से कर्म के अधीन हो गया। अतः वह कर्मफल का भोग भी अवश्य करता है और सुख-दुःख की विविधता से अनेक प्रकार के स्वाद उसे प्राप्त हैं। दूसरा परमात्मा रूपी पक्षी कर्मफल का भोग नहीं करता है, इसलिये कर्मफल की निरासक्ति के कारण वह आनन्द स्वरूप है। इस प्रकार इस मन्त्र में भी जीवात्मा और परमात्मा का भेद पूर्ण स्पष्ट है।

(तमेव०, श्वेत उ० ३।८) उस सच्चिदानन्द परमात्मा को जानकर जीव अमृतत्त्व को प्राप्त होता है। (ॐ यो ह वै०, रामतापनीय०) ॐकार स्वरूप श्रीरामचन्द्र ही भगवान्, अद्वैत, परमात्मा और आनन्दात्मा कहे गये हैं। [आनन्दो ब्रह्म०, तैत्ति० ३।६।१] अन्नमय, प्राणमय आदि कोशों से विलक्षण 'आनन्दमय कोश' का ज्ञान करो, यह उपदेश वरुण ने महर्षि भृगु को दिया है। इत्यादि श्रुतियाँ ब्रह्मके लक्षण, * स्वरूप और गुणों का प्रतिपादन करती हैं। इस प्रकार तात्पर्य निर्णायक उपक्रम और उपसंहार द्वारा परम पुरुष श्रीरामनाम से प्रसिद्ध ब्रह्म में समन्वय

---

* लक्षण के दो भेद हैं। तटस्थ और स्वरूप लक्षण। जैसे कि कहा जाये कि अमुक वृक्ष के एक हाथ ऊपर हँसिये की भाँति चन्द्रमा है। इस वाक्य में हँसिये की भाँति स्वरूप लक्षण है और वृक्ष के एक हाथ ऊपर लखाना यह तटस्थ लक्षण है।

है । तथा "श्रीराम ही सत्य और परब्रह्म हैं । श्रीराम से भिन्न कुछ भी नहीं है, इस वचन से श्रीराममन्त्राचार्य भगवान् श्री-व्यासजी ने **"तत्तु समन्वयात्"** इस सूत्र के द्वारा परब्रह्म 'श्रीराम तत्त्व' का प्रतिपादन किया है । इस प्रकार उपासना की विधि प्रतिपादित होने से वेदान्त–वाक्यों का ब्रह्म में समन्वय होता है, यह स्पष्ट ही है । और समन्वय पद यहाँ व्यतिरेक का भी उपलक्षण है । यथा [श्रीमद्भा० मंगलाचरण में] व्यासजी का ही वचन है–**"जन्माद्यस्य यतः" इति** । यह [१।१।२] ब्रह्मसूत्र है और **"यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते०"** इत्यादि तैत्तिरीय श्रुति वचन है । यह कृष्णयजुर्वेद के अन्तर्गत है। यह ब्रह्म का तटस्थ लक्षण है ।'

तत्सत्वे तत्सत्वमन्वयः । तदभावे तदभावः व्यतिरेकः ।।

परमात्मा की सत्ता से ही जगत् की सत्ता है, उसके अभाव में नहीं। वही अपने अंश से जगत् रूप बनता भी है और रचयिता भी है । **"अभिज्ञः और स्वराट्"** कहने का तात्पर्य वह परमात्मा जड़ नहीं, किन्तु चेतनस्वरूप है । वह ब्रह्माजी का भी गुरु है, अतः सर्वज्ञ है । **तस्यार्थं इति**–जगत्कारणब्रह्म सभी कार्यों में व्यापकरूप से समन्वित है । **'पादोऽस्य०'** इस श्रुतिवाक्य से ब्रह्म का सर्वज्ञत्व और समन्वयत्व ज्ञापित है । इति शम् ।

इस प्रकार जगद्गुरु रामानन्दाचार्य चरणाश्रित पं० रामदेवदास 'श्रीवैष्णव' विरचित ब्रह्मसूत्र हरिभाष्यभाषानुवाद एवं भक्तिभूषणभाष्य में समन्वयाधिकरणात्मिका चतुः सूत्री समाप्त हुई ।

हरिभाष्यम्–सांख्यमतानुसारेण त्रिगुणात्मिकाप्रकृतेरेवोपादानकारणत्वाद्व्यापकत्वाच्च कथं जगन्निमित्तोपादानकारणत्वं ब्रह्म स्वीकार्यम् ? एतस्मात् समाधत्ते—

❁ ईक्षतेर्नाशब्दम् १।१।५ ❁

उपनिषत्स्वीक्षधातोः प्रयोगाः दृश्यन्ते। वेदेषु ऐक्षतेत्यादिपदेन ब्रह्म गृह्यते, यथा–"तदैक्षत बहु स्याम प्रजायेय" (छा० उ० ६।२।३) "अशब्दं न" अर्थात् ब्रह्मतत्त्वं शब्द प्रमाण रहित मितिनोचितम्। सद्विद्या प्रकरणमेवास्य विषयः। परात्परमीक्षते–(बृहदारण्यक १।३।९) इति श्रुत्या सगुणब्रह्मपरात्परस्यैवेक्षणं संपद्यते।

आशङ्कतेऽत्र कथङ्कारेण परात्परपुरुषे जगदुत्पत्तीत्यादिकार्यं विद्यते ? उत्तरयति–ऋगादिवेदेषु अस्येक्षणस्य प्रमाणं दृश्यते। ईक्षणम्–दर्शनं, विचार इत्यर्थः। अत ईक्षधातो योऽर्थस्तदर्थवाचिनां सर्वेषां धातूनां ग्रहणमित्यर्थः। ईक्षणप्रतिपादयित्र्यः श्रुतयश्चेमाः 'सं यज्जनान्क्रतुभिः शूर ईक्षयत्' (ऋ० १।१३२।५) अर्थात् परमैश्वर्यवान् परमात्मा सर्वान् पदार्थान्प्रज्ञाभिः सम्यगीक्षत इत्यर्थः।

ईक्षेरायः क्षयस्य चर्षणीनामुत व्रजमपवर्तासि गोनाम्। (ऋ० ४२०।८) अर्थात् अयि परमेश्वर ! त्वं प्रजानां धनस्यज्ञानरूपस्य शुभेऽशुभे वा कर्मणि निवासस्य प्रसवतेरित्यर्थः। प्रजानां ज्ञानस्य पुण्यापुण्योश्च त्वं द्रष्टासि इति भावः। गोनां गवामिन्द्रियाणां व्रज समूहस्य निषिद्धेऽनिष्टे पथि प्रवर्त्तमानस्या-

पर्वतासि–निरोधकोऽसि इत्यर्थः । नकी मिन्द्रो निकर्तवे न शक्रः परिशक्तवे विश्वं श्रृणोति पश्यति । (ऋ० ८।७५।५)

यो विश्वानि विपश्यति भुवना सं च पश्यति स नः पूषयिता भुवत् (ऋ० ३।६२।९) इत्यादि श्रुतिषु सर्वत्र चिदचिद्विशिष्ट-ब्रह्मणो ज्ञानस्वरूपता ईक्षणकर्तृता च प्रतिपादिता । 'यस्मिन्वेदा निहिता० (अथर्व० ४।३५।६) इत्यनेन लेशमात्रमज्ञानमपि वार्यते तस्य । इत्थमत्र वेदप्रमाणविचाराच्च जगद्धेतुत्वस्य ब्रह्मणः शास्त्रयोनित्वं संगच्छते । जडादयो वार्यंते इति ।

भक्तिभूषणभाष्य–साँख्यमत के अनुसार त्रिगुणात्मिका प्रकृति के ही उपादान कारण और सर्वभूतव्यापकत्व होने से जगत् का उपादान और निमित्त कारण ब्रह्म कैसे स्वीकार किया जा सकता है ? अतः इसका समाधान प्रस्तुत सूत्र है—

ईक्षतेर्नाशब्दम् १।१।५

उपनिषदों में **ईक्ष** धातु का प्रयोग देखा जाता है । वेदों में ऐक्षत इत्यादि पद से ब्रह्म गृहीत है । यथा [तदैक्षत०, छा० ६।२।३] परब्रह्म ने संकल्प किया कि एक व्यष्टि जगत् के रूप में मैं अनेक रूप में प्रकृष्टरूप से उत्पन्न हो जाऊँ ।

"अशब्दं न" इस अन्वय का व्युत्पत्ति मूलक अर्थ यह है कि ब्रह्मतत्व शब्द प्रमाण रहित है, यह कहना उचित नहीं । इसका विषय सद्विद्या प्रकरण है । "परात्परमीक्षते" इस श्रुति द्वारा सगुण ब्रह्म परात्पर का संकल्प [ईक्षण] सम्पन्न होता है । यहाँ आशंका है कि परात्पर पुरुष में जगत् की उत्पत्ति आदि कार्य कैसे विद्यमान है ?

उत्तर–ऋग् आदि वेदों में इसका प्रमाण है। ईक्षण का अर्थ दर्शन और विचार है। अतः ईक्ष धातु का जो अर्थ है, उस अर्थ के वाची सभी धातुओं का यहाँ ग्रहण होता है। तथा ईश्वरसत्ता का प्रतिपादन करने वाली ये निम्नलिखित श्रुतियाँ हैं—

'**सं यज्जनान्क्रतुभिः शूर ईक्षयत्**" अर्थात् परम ऐश्वर्यवान् परमात्मा सभी पदार्थों को प्रज्ञा [दिव्यज्ञान] द्वारा देखता है। (**ईक्षे रायः क्षयस्य चर्षणीनामुत व्रजमपवर्तासि गोनाम्** ऋ० ४।२०।८), अर्थात् हे परमेश्वर ! तुम प्रजा के ज्ञानरूप शुभाशुभ कर्मों में निवास की प्रसक्ति से अर्थात् प्रजा के पुण्य और पाप के तुम द्रष्टा हो। अनिष्ट पथ पर चलने वाले इन्द्रिय समूह के तुम निरोधक हो। (**नकीमिन्द्रः, ऋ० ८।७५।५**) परम प्रकाश रूप [परम समर्थ] परमात्मा श्रीरामचन्द्र का पराभव करने में कोई समर्थ नहीं है और वह विलक्षण शक्ति सम्पन्न सम्पूर्ण विश्व को देखता है। (**यो विश्वाभि विपश्यति भुवना सं च पश्यति। स नः पूषाविता भुवत्, ऋ० ३।६२।९**) जो परमात्मा सम्पूर्ण भुवनकोश को अन्तर और बाह्य दोनों ओर से देखता है और उसकी सम्यक् रक्षा करता है, वह पोषणकर्ता हमारा रक्षक अनेक रूप होता है, इत्यादि श्रुतियों में सर्वत्र चिदचिद् विशिष्ट ब्रह्म की ज्ञानरूपता और ईक्षणकर्तृता प्रतिपादित है।

(**यस्मिन् वेदा निहिता०, अथर्व० ४।३५।६**) जिसमें विश्वरूप निखिल वेद निहित हैं, उसके उपदेश में वह ज्ञानरूप से स्थित है। इत्यादि श्रुतियों के प्रमाण से उस परमात्मा के लेश

मात्र भी अज्ञान का वारण हो जाता है। इत्यादि वेदों के प्रमाण और विचार से जगत् के हेतु ब्रह्म का शास्त्रयोनित्व सिद्ध होता है और जड़ आदि हेतुत्त्व का वारण हो जाता है। उक्त श्रुति-वाक्यों के समर्थन में श्रीमद्वाल्मीकि रामायण के वचन हैं—

सर्वाल्लोकान्सुसंहृत्य सभूतान् स चराचरान् ।
पुनरेव तथा स्रष्टुं शक्तो रामो महायशाः ॥ वा.रा. ५।५१।३९

अर्थात् सभी चराचर प्राणियों का संहार करके पुनः ज्यों का त्यों उनकी सृष्टि करने में महायशस्वी श्रीरामजी परमसमर्थ हैं। यह श्रीजानकी माता से श्रीहनुमान्‌जी ने कहा है। तथा-

ब्रह्मास्वयम्भूश्चतुराननो वा इन्द्रो महेन्द्रः सुरनायको वा ।
रुद्रस्त्रिनेत्रस्त्रिपुरान्तको वा स्थातुं न शक्ता युधि राघवस्य ॥

अर्थात् सृष्टिकर्त्ता ब्रह्माजी, त्रिपुरान्तक श्रीरुद्रजी और वज्रधारी इन्द्र श्रीराघवजी के समक्ष युद्ध में स्थिर नहीं रह सकते। यह श्रीरामजी के परब्रह्मत्व का प्रबल उदाहरण है। गोस्वामीजी ने भी कहा है—

राम सच्चिदानन्द दिनेसा। नहिं तहँ मोह निसा लवलेसा ॥

☆ इति ईक्षत्यधिकरण समाप्त ☆

हरिभाष्यम्—ननु ईक्षणमात्रेणैव न जगत्कारणत्वं सर्वज्ञत्वञ्च चेतनस्य ब्रह्मणः "तत्तेजोऽसृजत" "तत्तेज ऐक्षत" "ता आप ऐक्षन्त" इत्यप्तेजसोरचेतनयोरपीक्षणत्वश्रवणात् ईक्षणन्तु गौणरूपेणापि मन्तुं शक्यते। तथा प्रधानस्यैव जगत्कारणत्वमुक्तम् इत्याशङ्क्य समाधत्ते—

❁ गौणश्चेन्नात्मशब्दात् १।१।६ ❁

अस्मिन् सूत्रे ईक्षणं गौणं नहि,अपितु प्रधानं वर्तते। आत्मशब्दात् तात्पर्यमात्मवाचकशब्दात्। यत्रेक्षणं व्यवह्रियते तत्र सर्वत्रैवात्मशब्दः श्रूयते। "स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो" (छा० उ० ६।८।४) इत्यात्मशब्देन चेतनत्वमभिधत्ते। नह्यात्मनो जडत्वं येन गौणत्व मीक्षणस्य स्यात्। पूर्वोक्तेषु ऋगादिमन्त्रेषु संयज्जनान्नादिषु इन्द्रादिपदेन परमात्मतत्वमेव वर्णितम्। अतो जडजीवादिषु गौणत्वं न संघटते इति।

भक्तिभूषणभाष्य–ईक्षणमात्र से ही चेतन ब्रह्मका जगत्कारणत्व और सर्वज्ञत्व नहीं सिद्ध होता है, यह नहीं कहना चाहिये। **"तत्तेजोऽसृजत्"** आदि श्रुतियों के अनुसार अचेतन तेज और अग्नि के ईक्षणत्व श्रवण होने से वह ईक्षण तो गौपरूप से भी जाना जा सकता है ? तथा प्रधान का ही जगत्कारणत्व है, यह कहा गया है, यह आशंक्त कर उसका समाधान करते हैं–

❁ गौणश्चेन्नात्मशब्दात् १।१।६ ❁

भक्तिभूषणभाष्य–इस सूत्र में ईक्षण गौण नहीं, अपितु वह प्रधान कार्य है। "आत्मशब्दात्" इसका तात्पर्य है, आत्मवाचक शब्दात्। अर्थात् जहाँ ईक्षण कार्य का व्यवहार होता है, वहाँ सर्वत्र आत्मशब्द ही सुना जाता है। [स आत्मा०, छा० ६।८।४] यहाँ आत्मशब्द चेतनत्व का वाचक है। इस आत्मा में जडत्व नहीं है, जिससे कि ईक्षणधर्म को गौण कहा जा सके। पूर्वोक्त

ऋक् आदि ऋचाओं में **'सं यज्जनान्'** इत्यादि पद द्वारा परमात्म-तत्त्व ही वर्णित हैं, अतः जड, जीव आदि में गौणत्व सिद्ध नहीं होता है ।

अन्य दर्शनों से भिन्न सांख्यदर्शन में ही प्रकृति को त्रिगुणात्मिका और प्रधान तथा महान माना गया है । **"पंगुअन्धवन्न्याय"** प्रसिद्ध ही है । अर्थात् प्रकृति अन्धी और पुरुष पंगु है । पुरुष चेतन और प्रकृति जड है । अतः प्रकृति के कन्ध पर बैठकर वह उसे मार्ग निर्देश करता है, यही आश्चर्यरूपा सृष्टि कही जाती है । इस प्रकार पुरुष की चेतनता निश्चित है किन्तु जड प्रकृति प्रधानतया जगत् के कारण में स्वतन्त्र मानी गयी है । उसी एक के जानने से ही अखिल प्रपञ्च का विज्ञान प्राप्त हो जाता है, अतः जीव दुःखत्रय से मुक्त हो जाता है । इसके समर्थन में अनेक श्रुतिप्रमाण भी उपस्थित करते हैं । यथा—

अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाम् ।
(श्वेताश्वतरोपनिषद् ४।६)

अपने समान बहुत से प्राणिसमूह की त्रिगुणमयी सृष्टि करने वाली त्रिगुणमयी अनादि प्रकृति को । अर्थात् सत्वगुणके अंश से शुक्ल, रजोगुण के अंश से लोहित तथा तमोगुण के अंश से कृष्णप्रजा की सृष्टि करती है । ये सभी सांसारिक उत्पत्ति, पालन और संहार आदि कार्य उस अष्टधा [भूमि, जल, तेज, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार] प्रकृति के गुणों द्वारा कर्म रूप में परिणत हैं ।

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः ।
भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च ।।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ।।

मूल प्रकृति से महदादि कार्य सम्पन्न होते हैं । प्रकृति सहित इनकी संख्या २४ है । यथा–१-पृथिवी, २-जल, ३-तेज, ४-वायु, ५-आकाश ये पञ्चमहाभूत हैं । इनकी पञ्च तन्मात्रा है, ✫ १-शब्द, २-रूप, ३-रस, ३-गन्ध, ५-स्पर्श । इन्द्रियों द्वारा इनका भोग होता है । वे हैं पञ्चकर्मेन्द्रिय– हाथ, पैर, गुदा, लिङ्ग और जिह्वा । पञ्चज्ञानेन्द्रिय–कान, नेत्र रसना, नाक, त्वचा । इन इन्द्रियों का प्रेरक और सबमें अनुगत मन है । उसके पश्चात् बुद्धि और अहंकार यही चौबीस तत्त्व सांख्य में माने गये हैं । इसी संख्या के आधार पर सांख्यदर्शन है ।

किन्तु यह हेतु अविचारित है क्योंकि प्रकृति के गुणों से निर्लेप चेतनब्रह्म को ही सर्वतन्त्र स्वतन्त्र प्रायः सभी आस्तिक दर्शन मानते हैं ।

✫ इन शब्दादि विषयविष के सेवन से प्राणियों की मृत्यु होती है । शब्द संगीत प्रेमी होने से हिरण, रूप प्रेमी होने से पतिङ्गे, रस– जिह्वास्वाद का प्रेमी होने से मछली, गन्ध प्रेमी होने से भ्रमर और स्पर्श सुख का प्रेमी होने से हाथी पकड़ा और मारा जाता है । **कुरङ्ग मातङ्ग पतङ्ग भृङ्गा मीना हताः पञ्चभिरेव पञ्च** । मनुष्य तो पाँचों प्रकार के विषयों का उपभोग करता है । इस भौतिक वैज्ञानिक युग में मनुष्य आकण्ठ डूबा

सृष्ट्यादि कार्यों का सम्पादन करने वाली सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ ब्रह्म की शक्ति को ही प्रकृति कहा जाता है और वह ब्रह्म से अभिन्न है। भगवान् की इच्छा शक्ति भगवत्परतन्त्र है। उपनिषदों में उस पुरुषपदवाच्य ब्रह्म को आत्मा, ईश्वर, इन्द्र, विष्णु आदि नामों से कहा गया है। ब्रह्मसूत्र में भी **"तदधीनत्वादर्थवत् १।४।३"** कहकर उसे परतन्त्र कहा गया है। माया प्रकृति को जानो और मायापति तो महेश्वर को जानो।

मायान्तु प्रकृतिं विद्याद् मायिनं तु महेश्वरम्। (श्वेत० ४।१०)

यही श्रीगीता में स्पष्ट है—मेरी अध्यक्षता के बल से प्रकृति चराचर की सृष्टि करती है।

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्।
प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य विसृजामि पुनः पुनः॥ (गीता० ९।८)

"स्वाम् प्रकृतिम्" विशेषण है। अपनी प्रकृति को अङ्गीकार कर जीवों के कर्मानुसार उनकी पुनः पुनः रचना करता हूं।

है। भगवान् ही बचावें ! **विषं याति इति विषयः** अर्थात् जो विष रूप में हो जाय वह विषय है। अतः भोगों को हम नहीं भोग रहे हैं, वह हमें भोग रहा है—**भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ताः।** [शंकराचार्यजी] जैसे विवेकी लोग ब्रह्म, जीव और माया का ज्ञान करते हैं, वैसे पशु तुल्य लोग भी खाना—पाखान और सोना, भोग करना ही तत्त्वत्रय मानते हैं—

आहारनिद्राभयमैथुनञ्च सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम्।
धर्मो हि तेषामधिको विशेषो धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः॥

इस प्रकार प्रकृति और पुरुष दोनों अनादि हैं। राग, द्वेष आदि विकार तथा त्रिगुणात्मक जगत् प्रकृति से उत्पन्न हुआ जानो।

प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि ।
विकारांश्च गुणांश्चैव विद्धि प्रकृतिसम्भवान् ।। (गीता० १३।१९)

आगे के दो श्लोकों में सम्पूर्ण चराचर जगत् की माता प्रकृति और पिता ब्रह्म कहा गया है। ब्रह्म के जगत् रूप बीज को प्रकृति अपने गर्भ में धारण करती है—

मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन् गर्भं दधाम्यहम् ।
सम्भवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत ।।
सर्वयोनिषु कौन्तेय ! मूर्त्तयः सम्भवन्ति याः ।
तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता ।। (गीता १४।३-४)

प्रकृति से उत्पन्न जो सत्व, रज और तमोगुण हैं उन्हीं की ममता और अभिमान से इस अविनाशी आत्मा का बन्धन होता है—

सत्वं रजस्तम इति गुणः प्रकृतिसंभवाः ।
निबध्नन्ति महाबाहो देहे देहिनमव्ययम् ।। (गीता० १४।४)

अन्तर्यामी रूप से उस प्रकृति के कण–कण में विराजमान रहने के कारण वह हाथ, पैर आदि के विना कहा गया है। इसीलिये वह "कर्त्तुमकर्तुमन्यथा कर्तुं समर्थ" कहा गया है

अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः ।
स वेत्ति वेद्यं न तस्यास्ति वेत्ता तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तम् ।।
(श्वेत० उ० ३।१६)

इसी का अनुवाद श्रीरामचरितमानस में किया गया है—

आदि अन्त कोउ जासु न पावा । मति अनुमानि निगम अस गावा ॥
विनु पद चलइ सुनइ विनु काना । कर विनु करम करइ विधि नाना ॥
तन विनु परस नयन विनु देखा । ग्रहइ घ्रान विनु वास असेषा ॥
आनन रहित सकल रस भोगी । विनु बानी बकता बड जोगी ॥
अस सब भाँति अलौकिक करनी । महिमा जासु जाइ नहिं बरनी ॥

जेहि इमि गावहिं वेद बुध जाहि धरहिं मुनि ध्यान ।
सोइ दसरथसुत भगतहित कोसलपति भगवान् ॥

प्रकृति ईश्वरसहचरी है, अतः अधिष्ठान ब्रह्म के साथ अवतार सृष्ट्यादि कार्य में उसका संयोग आवश्यक कहा गया है । माया सहचरी के विना ब्रह्म के अवतार और लीला का विस्तार नहीं हो सकता है । अतः गीता में—

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन् ।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया ॥

यहाँ **'आत्ममायया शब्द'** अप्रधान है, अतः **'सहयुक्तेऽप्रधाने'** इस पाणिनीयसूत्र से उसमें तृतीय विभक्ति आयी । जैसे 'पुत्र के साथ पिता आया' । तो इसका अर्थ यह हुआ कि पिता मुख्य रूप से आया और गौणरूप से पुत्र को भी साथ लेते आया— **'पुत्रेण सहागतः पिता'** यही ब्रह्म का सहागत अवतार है। इसीलिये श्रीरामजी माया मनुष्य कहे गये हैं—**"मायामनुष्यं हरिम् 'मायया मनुष्यः'—मायामनुष्यस्तं हरिं श्रीरामम् इत्यर्थः ।**

अतः वे महाराज श्रीमनु से कहते हैं—मैं तो आपका पुत्र होऊँगा, किन्तु साथ ही यह मेरी माया भी—

आदिशक्ति जेहि जग उपजाया । सोउ अवतरिहिं मोरि यह माया ।।

श्रीमहारास के उपक्रम में अपनी योगमाया शक्ति का आश्रय स्वीकार करते हैं । **"भगवान् अपि आश्रितः, कमुपाश्रितः ? योगमायामुपाश्रितः"** अर्थात् योगमाया का ध्यान किये । वस्तुतः शक्ति और शक्तिमान् का अभेद सम्बन्ध है । शक्ति वस्तु है और शक्तिमान् पात्र है । आत्मशब्द से सृष्ट्यादि कार्य के प्रति आत्मशक्ति का बोध होता है । अतः गोस्वामीजी ने कहा—

गिरा अरथ जल वीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न ।
बँदउँ सीतारामपद जिन्हहिं परम प्रिय खिन्न ।।

अब इसी समाधान से अतिरिक्त **"विभिन्नरुचिर्हि लोकः"** निज-२ रुचि के अनुसार कोई शक्ति प्रधान तो कोई शक्तिमान प्रधान मानता है ।

अन्यदपि कारणमुपस्थापयति—

❀ तन्निष्ठस्य मोक्षोपदेशात् १।१।७ ❀

हरिभाष्यम्—आत्मशब्दस्य प्रयोगो मनसेन्द्रियाय शरीराय चापि प्रयुज्यते । अतो हेतो उपर्युक्त श्रुतावात्मानं गौणरूपत्वात् प्रकृत्याः वाचकं मत्वा तां जगत्कारणं मन्येत् तर्हि का आपत्ति इति निराक्रियते । तैत्तिरीयोपनिषदि सृष्टि प्रकरणे स्पष्टमायाति यत् "तदात्मानं स्वयमकुरुत" अर्थात् स्वयमेव स्वकीयस्वरूपं जड-चेतनरूपे प्रकटयतिस्म । तस्मिन्ब्रह्मणि निष्ठा सर्वातिशायिनी रतिर्यस्य तस्य चेतनस्य मोक्षोपदेशादपि स ईक्षणकर्त्ता न तद्भिन्न-श्चेतनाचेतनपोरुभयोर पिकोत्पन्यः । न वा स गौण प्रयोगः ।

कुत्रोपलभ्यते तन्निष्ठस्य मोक्षोपदेशः ? वेदेषु उपनिषत्सु चेति सप्तमं सूत्रम् । (१।१।७)

❀ तन्निष्ठस्य मोक्षोपदेशात् १।१।७ ❀

भक्तिभूषणभाष्य–दूसरा हेतु कहते हैं–"तन्निष्ठस्य आत्म शब्द मन, इन्द्रिय और शरीर के लिये भी प्रयुक्त होता है । इस कारण उपर्युक्त श्रुति में आत्मा को गौणरूप से प्रकृति का वाचक मानकर उसे जगत्कारण मान लिया जाये, तो क्या आपत्ति है? इसका निराकरण कर रहे हैं—

तैत्तिरीय उपनिषद् के सृष्टि प्रकरण में स्पष्ट आता है कि "वह ब्रह्म स्वयं ही अपने स्वरूप को जड–चेतन रूप में प्रकट किया है । उस ब्रह्म में सर्वातिशायिनी निष्ठा (रति) जिसकी है, उस चेतन के मोक्षोपदेश से भी वह ईक्षणकर्त्ता और उससे भिन्न चेतन और अचेतन दोनों कोई भी अन्य नहीं है । अथवा न वह गौणप्रयोग है । प्र०– उस ब्रह्मनिष्ठा का मोक्षविषयक उपदेश कहाँ उपलब्ध है ? उ०–वेदों में ।

विद्याञ्चाविद्याञ्च यस्तद्वेदोभयं सह ।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते ।। (यजुर्वेद ४०)
वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णन्तमसः परस्तात् ।
तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ।। (यजु०)

वेद उस परमात्मा को महापुरुष, आदित्यवर्ण और अन्धकार से परे कहते हैं । अतः उसे जानकर जननमरणपाश को सर्वथा

पार कर जाता है। अयन अर्थात् परमपद की प्राप्ति के लिये (ईश्वर भजन के अतिरिक्त) दूसरा मार्ग नहीं है।

कठोपनिषद् में रथ के रूपक से मोक्षोपदेश प्राप्त होता है। जन्म-मृत्युरूप संसार से पार होने के लिये श्रीयमराजजी नचिकेता से कहते हैं—

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च॥
इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयाँस्तेषु गोचरान्।
आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः॥

हे नचिकेता! इस शरीर को रथ जानो और इसमें बैठे हुये जीवात्मा को रथी जानो। बुद्धि को सारथि और मन को लगाम समझो। इस रूपक में ज्ञानीजन दसों इन्द्रियों को घोड़े बतलाते हैं। विषयों को उनके विचरने का स्थान (चारागाह) बतलाते हैं। शरीर, मन और इन्द्रिय से युक्त जीवात्मा इसका भोक्ता है। जिधर मन होता है उधर ही इन्द्रियाँ जाती हैं। जिधर लगाम घुमा दिया जाय, उधर ही घोड़े जाते हैं। इन्द्रियाँ बहुत बलवती हैं, बड़े-बड़े विद्वानों को भी मोहित कर लेती हैं। इन इन्द्रियों से परे उसके विषय हैं, विषयों से परे मन है। मन से परे बुद्धि और उस बलवती बुद्धि से परे अर्थात् अत्यन्त श्रेष्ठ और बलवान् महान् आत्मा सबका स्वामी है।

उस जीवात्मा से बलवती माया जो भगवान् की अव्यक्त शक्ति है, उससे भी श्रेष्ठ स्वयं परमेश्वर है। उस परमेश्वर से

बढ़कर कोई नहीं है । वह सबकी सीमा और वही परमगति है ।

इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः ।

मनसस्तु पराबुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान् परः ॥

महतः परमव्यक्तमव्यक्तात् पुरुषः परः ।

पुरुषान्न परं किञ्चित्सा काष्ठा सा परागतिः ॥

दृढ़ अभ्यास पूर्वक बहुत ही सावधानी से अपने को उस परमात्मा में विलीन कर देना चाहिये । अतः श्रुति पुनः पुनः प्रेरणा देती है—हे मनुष्यों जन्म-जन्म से अज्ञान निद्रा में क्यों सो रहे हो । अत्यन्त दुर्लभ मानव शरीर को व्यर्थ में क्यों व्यय कर रहे हो । तुम अपने कल्याण का मार्ग क्यों नहीं सोचते हो । श्रेष्ठ महापुरुषों के श्रीचरणों की धूलि से विवेक को क्यों नहीं जगाते । यह परमेश्वर का मार्ग तीक्ष्ण की हुई छुरे की धारा के समान अति कठिन है ।

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत ।

क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत् कवयो वदन्ति ॥

(कठोपनिषत् १।३।१४)

गोस्वामीजी महाराज यही चेतावनी दे रहे हैं—

कछु ह्वै न आइ गयो जनम जाय ।

अति दुर्लभ तनु पाइ कपट तजि भजे न राम मन वचन काय ॥

लरिकाई बीती अचेत चित, चंचलता चौगुनी चाय ।

जोबन जर, जुवती–कुपथ्य करि भयो त्रिदोष भरि मदन वाय ॥

मध्य बयस धन हेतु गँवाई कृषी बनिज नाना उपाय ।
रामविमुख सुख लह्यो न सपनेहुँ, निसि वासर लह्यो तिहूं ताय ।
सेये नहिं सीतापति-सेवक लाधु सुमति भले भगति भाय ।
सुने न पुलकि तनु कहे मुदितमन, किये जे चरित रघुवंश राय ।।
अब सोचत वनि बिनु भुजंग ज्यों विकल अंग दले जरा धाय ।
सिर धुनि-धुनि पछितात मींजि कर, कोउन मीत हिय दुसह दाय ।
जिन्ह लगि निज परलोक बिशार्यो, ते लजात होत ठाढ ठायँ ।
तुलसी अजहुँ सुमिरि रघुनाथहिं तरो गयन्द जाके अर्द्ध नायँ ।।
(वि० प० ८३)

इस प्रकार मोक्षोपदेश अचेतनशक्ति की उपासना परक नहीं है अपितु मायापति की शरणागति से तात्पर्य है । अपरश्चायं हेतु—

❀ हेयत्वावचनाच्च १।१।८ ❀

हरिभाष्यम्—हातुं योग्यं हेयम् । तस्य भावो हेयत्वम् । यदि अत्र परमोत्मोपदेशो न स्यात् तथा च प्रधानस्य प्रकृते-रुपदेश स्यात् तर्हि तस्य परमात्मनोपदेशः हेयत्वं ब्रूयात् । अतो नात्र प्रकृते "प्राधान्यम् । परमात्मनो बहुभिः श्रुति प्रमाणैरुपा-देयत्वं सिद्ध्यति । एतस्यादत्रअचेतनप्रकृतेः प्रकरणमेव नास्ति । इति (१।१।८)

❀ हेयत्वावचनाच्च १।१।८ ❀

भक्तिभूषणभाष्य—अब ऊपर हेतु कह रहे हैं 'हेयत्व' आदि से । ओहाक् त्यागे धातु से 'हातुं' यह पद त्यागार्थक है । चतुर्थी

विभक्ति में तुमुन् प्रत्यय होता है। त्याग के भाव को हेयत्व कहते हैं। यदि यहाँ परमात्मा का उपदेश न होता तथा प्रधान प्रकृति का उपदेश होता तो उस परमात्मा का हेयत्व उपदेश कहा जा सकता था। अतः यहाँ प्रकृति की प्रधानता नहीं है। अनेक श्रुति प्रमाणों द्वारा परमात्मा का उपदेश सिद्ध होता है। अतः यहाँ अचेतन प्रकृति का प्रकरण ही नहीं है।

चेतन, चेतन ही होता हैं और अचेतन, अचेतन ही। अतः प्रकृति द्वारा उत्पन्न अनेक भौतिक चाकचिक्य विषय विलास, रमणीय रमणी, पुत्र-मित्र आदि मात्र मन को लुभाने वाले हैं। वास्तविकता किसी में नहो है। प्रिय वस्तु वा व्यक्ति के मिलन से जितना सुख मिलता है उससे अधिक कष्ट तो तब होता है, जव उसका वियोग हो जाता है। शत्रु मिलने पर दुःख देता है और मित्र प्राणी बिछुड़ने पर प्राण ही ले लेता है—

मिलत एक दारुन दुःख देहीं। बिछुरत एक प्राण हरि लेहीं॥

अतः इस असार संसार में कोई स्थायी कैसे हो सकता है? जहाँ संयोग है, वहीं वियोग छिपा है। जहाँ सुख है, वहीं मेहमान की भाँति दुःख भी छिपा है। अनुभवी महापुरुषों का कहना है कि जो जिसका जितना प्रशंसक होता है, वही उसका उतना निन्दक भी हो जाता है। ये विषय विष धीरे-धीरे मारते हैं। सम्पत्ति के संग्रह में जितना कष्ट होता है उसके वियोग में मृत्युदायक कष्ट हो जाता है। विश्वासपात्र में ही विश्वास घात छिपा है। यह प्रियतम शरीर एक दिन साथ छोड़ देता

है। असाध्यरोग अथवा अति वृद्धावस्था के कारण यह सुन्दर शरीर भारतुल्य हो जाता है। अतः इस स्वप्न तुल्य संसार से जाग जाने पर दुःख निवृत हो जाता है। मोहरूपी निद्रा के त्याग किये विना ज्ञानरूप श्रीराम कृपा का अनुभव नहीं हो सकता। पूज्यपाद गोस्वामीजी कहते हैं –

जागु जागु जीव जड जोहै जग जामिनी।
देह गेह नेह जानु जैसे घन–दामिनी॥
सोवत सपने सहै संसृति संताप रे।
बूड़ो मृगवारि, खायो जेंवरी को साँप रे।
कहैं वेद बुध तू तो बूझिमन माँहि रे।
दोष दुःख सपने के जागे ही पै जाँहि रे॥
तुलसी जागे ते जाइ ताप तिरु ताय रे।
राम नाम सुचि रुचि सहज सुभाय रे॥ (वि० प० ७३)

कवित रामायण में झुंझलाकर कहते हैं, जानकी जीवन के जाने विना सभी पदार्थज्ञान व्यर्थ है –

झूठो है, झूठो है झूठो सदा जग सन्त कहन्त जे अन्त लहा है।
ताको सहै सठ संकट कोटिक काढत दन्त करन्त हहा है॥
जानपनी को गुमान बड़ो तुलसी के विचार गंवार महा है।
जानकी जीवन जानि न जान्यो तो जान कहावत जान्यो कहा है॥

उपर्युक्त श्रीतुलसीदासजी महाराज के उद्‌गार **'तमेव विदित्त्वाऽतिमृत्युमेतिनान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय'** इस श्रुतिवचन के परिपक्व अनुभव हैं। इससे यही निश्चित होता है कि जड

माया का त्याग कर चेतन परमात्मा को सर्वतो भावेन स्वीकार करो ।

जड अर्थात् प्रकृतिवादी लोग जड़को सृष्टि का मूल मानते हैं और यह कहते हैं कि उसी जड का स्थूल रूप पंचमहाभूत आदि है । मनुष्य को भी बन्दर की औलाद कहते हैं । आदि मानव मूर्ख, असभ्य और जंगली जीवथा । लेकिन उन बेचारों को इतना विचार नहीं आता कि मानव को मानवता का ज्ञान किसने दिया ? ज्ञान चैतन्य है कि नहीं ? उस ज्ञान का प्रथम प्रकाश कहां से निकला । ब्रह्मगायत्री मन्त्र की सत्यता को किसने अनिवार्य कहा ? इत्यादि । इसका समाधान अध्यात्म शास्त्र करता है । **'तत् सृट्ष्वा तदेवानुप्राविशत्'** सृष्टि रचना करके वह अन्तर्यामी रूपसे उसी में समा गया । जल की शीतलता पावनता ईश्वर है, पृथिवी की सहनशीलता और गन्धत्त्व ईश्वर है । अग्नि का दाहकत्व और सर्वभोग्यत्व ईश्वर है । प्राण आदि वायु का स्पर्शत्व ईश्वर है । आकाश का निःसीमता ईश्वर है। सब में वही समाचार है । जल में निवास कर श्रीनारायण ने चतुर्मुख ब्रह्मा को प्रकट किया । उन्हें वेदज्ञान दिया । आदि कवि ब्रह्माजी हुये । अतः यह चित्रविचित्र संसार अचित् विलास नहीं किन्तु चिद्‌विलास है। इसी असत्य भौतिक पदार्थों में सत्य-नारायण भी छिपा है । सत्य का ज्ञान कराने के लिये असत्य को माध्यम बनाया जाता है । सप्त ऋषि मण्डल नक्षत्रों के मध्य एक छोटा प्रकाशमय नक्षत्र अरुन्धती तारा कहा जाता

है। तो उस अरुन्धती तारे को दिखाने के लिए प्रथम सप्त ऋषि तारों को अरुन्धती बता कर लखाया जाता है। उसी प्रकार ईश्वर का अनुभव कराने के लिए अनेक धूप-छाया सहनी पड़ती है। अतः जो असत्य को साध्य मान लेता है, वह दुःखदायी है। असत्य साधन है और सत्य साध्य है शास्त्रकारों ने कहा— **असत्ये वर्त्मनि स्थित्वा ततः सत्यं समीहते**। कलियुग में सबसे सरल और सुगम साधन, जिसमें कभी धोखा नहीं वह निर्मल श्रीराम प्रेमवारि है।

रघुपति भगति बारि छालित चित्त बिनु प्रयास ही सूझै।
तुलसिदास कह चिद् विलास जग बूझत-बूझत बूझै॥

गीता में भगवान् कहते हैं--यह मेरी माया बड़ी घनचक्कर वाली है। इससे कोई छूटता नहीं है। इससे पार वही पा सकता है, जो मेरा ही आश्रय लेता है—

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥

कबीरदासजी कहते हैं—**माया महा ठगिनि हम जानी।**

इस प्रकार माया हेया और परमात्मा आत्मीय तथा अहेया है। इति [१।१।८]

इतोपि न प्रधानं सच्छब्दवाच्यमित्याह—

❀ प्रतिज्ञा विरोधात् १।१।९ ❀

हरिभाष्यम्—यदि सूत्रे सच्छब्दवाच्यप्रधानस्यैव जगत्कारण-मिष्टं भवेत्तर्हि प्रतिज्ञा विरोधः स्यात्। "एकेन विज्ञातेन सर्वं

विज्ञातं भवति" इत्येक विज्ञानेन सर्वं विज्ञान प्रतिज्ञा श्रूयते। श्रुतय एवं स्पष्टं विज्ञापयन्ति। कथनमिदं तदेव संगतं भवति यदासर्वात्मकस्य शारीरिकब्रह्मणस्तत्र ग्रहणभिमतं भवेत्। एतस्मान्मृदविज्ञानेनादित्यविज्ञानम्, आदित्यविज्ञानेन पृथिवी विज्ञानमपि च भवेत् किन्त्वेवं व्यवहारो दृश्यते नहि लोके। अतो हेतोः प्रतिज्ञाविरोधत्वात् तत्र प्रकृतेर्ग्रहणं नास्ति। परमात्मैव गृह्यते। इति नवमं सूत्रं समाप्तम्।

❀ प्रतिज्ञा विरोधात् १।१।६ ❀

भक्तिभूषणभाष्य–इससे भी प्रधान सत् शब्द का अर्थ नहीं हो सकता, अतः कहते हैं प्रतिज्ञा इत्यादि। यदि सूत्र में प्रधान सत्पदवाच्य का ही जगत्कारणत्व इष्ट होता तो प्रतिज्ञा विरोध हो जाता। 'एकेन विज्ञातेन' अर्थात् एक का विज्ञान हो जाने से सभी पदार्थों का ज्ञान हो जाता है 'इस एक विज्ञान से सर्वं विज्ञान की प्रतिज्ञा सुनी जाती है। इस प्रकार श्रुतियाँ स्पष्ट विज्ञापन करती हैं। यह कथन तभी सार्थक होता है जब सभी आत्म वस्तुओं के शरीरी ब्रह्म को ग्रहण वहाँ अभिमत हो। इसलिये मृतिका के विज्ञान द्वारा आदित्यका विज्ञान और आदित्य के विज्ञान से पृथिवी का भी विज्ञान हो जाय किन्तु ऐसा व्यवहार लोक में देखा नहीं जाता है। इस कारण प्रतिज्ञा विरोध होने से वहाँ प्रकृतिक ग्रहण नहीं है। परमात्मा ही गृहीत है।

वेदों में विविध ज्ञान विज्ञान के साथ एक प्रतिज्ञा वाक्य भी है। वह है अर्थात् जिस परमात्मा की छाया अथवा आश्रय

अमृत का कारण है और उनका अनाश्रय मृत्यु का कारण है।
यस्य छायामृतं यस्य मृत्युः (अथर्व० ४।२२)

तमीशानञ्जगतस्तस्थुषस्पतिंधियञ्जिन्वमवसेहूमहे वयम्, (शु०य० २५।१८)

अर्थात् चेतन तथा अचेतन जितने भी जायमान हैं उसके रक्षक और संकल्पमात्र से प्रिय करने वाले ऐश्वर्य के स्वामी उन परमात्मा को रक्षा हेतु हम आवाहित करते हैं। अतः जड की उपासना से इस प्रतिज्ञा के भङ्ग की आशंका होती है।१।१।९

इतश्च न प्रधानम् सत् पद वाच्यम्–

❀ स्वाप्ययात् १।१। ० ❀

हरिभाष्यम्–अप्ययो लयः। स्वस्य कारणं–स्वकारणम्। स्वकारणेऽप्ययः। अत्र मध्यपदलोपि समासः। "तस्मिन् हि तदेकनीडं भवती" तिश्रुतिः। एकनीडीभवनमेवाप्ययः। कार्यस्याप्ययः। स्वोपादान कारणमेव भवति इति नियमः। यथा प्रलयकाले सर्वं जगदेकनीडं भवति तथैव सुषुप्तिकाले जीवोप्येकनीडो भवति। ब्रह्मणिलयमाप्नोतीत्यर्थः। एकनीडमित्यस्य समानाधिकरणमित्यर्थः। यदि कार्यस्य कश्चिज्जड एव कारणं तर्हि चेतनस्यापि जीवस्य स्वकारणो जडे स्यादिवाप्ययः। परन्तु लोकशास्त्रेभ्यो विरुद्धं याति। अत्रेदमवधेयम्–नचनिराकारे परमात्मनिनिराकारस्य जीवस्य कथं लयः संगच्छते इति वाच्यम्। लयोनाम एकी भावोनहि लीनोभवतीत्यस्य तात्पर्यं यत् आश्रमं लभतेइत्येवार्थः। कारणे कार्यस्य तुयोभवत्येव किन्तु नहि

जीवात्मपरमात्मनोः कार्यकारणभावः । यदि जीवो नित्यां ब्रह्मणश्च जातो भवेत्तदा ब्रह्मणि कारणत्वं स्वीकृत्य तत्र जीवस्याप्यय वचनं निर्बाधं स्यात् । परमात्मना जीवस्य कथञ्चित्सङ्ग एवाप्यय शब्देन कथ्यते । आधाराधेययोः कश्चन सम्बन्धस्तु स्वीकार्यं एव । ननु परमात्मनि जीवस्याप्ययप्रसङ्ग एव नास्ति । तत्र तु "स्वमपीतो भवति" एवोक्तम् । कथं तर्हि परमात्मनि जीवलयः प्रतिपाद्यते श्रूयताम् ! स्वस्मिन् स्वस्यलयः क्वचिन्न दृश्यते । घटे घटस्य लयः दृश्यते । उत्तरयति—नहि घटे घटस्य लयो न दृश्यते । घट परमाणूनां घटपरमाणुषु लयो भवत्येव । विशीर्णे तादृग् व्यवहारो भवति । सत्यम् । स्व शब्दस्य व्यवहारः सम्बन्धिनमपि भवति । अतः सम्बन्धिभूते परमात्मनि जीवस्याप्ययो भवति एवमनुसन्धेयः इति स्वाप्ययादधिकरम् ।

❁ स्वाप्ययात् १।१।१० ❁

भक्तिभूषणभाष्य—अप्पय का अर्थ है, लय । स्व का कारण ही स्वकारण है । अर्थात् स्वकारण में लय (होने से) । यहाँ मध्यम पद लोपी समास है । **"तस्मिन् हि०"** इत्यादि श्रुति के आधार पर एक नीड होना ही लय है । कार्य का लय होता है । स्व उपादान कारण ही होता है, यह नियम है । जैसे प्रलयकाल में सम्पूर्ण जगत् एकनीड होता है, उसी प्रकार सुषुप्तिकाल में जीव भी एकनीड होता है । अर्थात् ब्रह्म में लय को प्राप्त होता है । **एकनीडम् एकञ्चतत् नीडञ्च इति एकनीडम्**, यह समानाधिकरण तत् पुरुष समास में आता है नीड का अर्थ घोंसला है।

यदि कार्यमात्र का किञ्चित जड ही कारण है तो चेतन जीव का भी स्वकारण अचेतन जड में ही लय होना चाहिये, परन्तु लोक और शास्त्र के यह विरुद्ध है। यहां यह विचारणीय है—निराकार परमात्मा में निराकार जीव का लय कैसे संगमित होता है ? यह नहीं कहना चाहिये। लय का नाम एकीभाव (एक होना नही है। लीन होता है, इसका तात्पर्य यह है कि आश्रम प्राप्त करना है, यही अर्थ है। कारण में कार्य का लय होता ही है किन्तु जीवात्मा और परमात्मा का कार्यकारण भाव नहीं है। यदि जीव नित्य है और ब्रह्म से आयगान है; तो भी ब्रह्म में कारणत्व स्वीकार कर यहाँ जीव का भी अप्यय वचन निर्बाध हो जाता है। परमात्मा के साथ जीव का सम्बन्ध किसी प्रकार के सम्बन्ध से अप्यय कहा जाता है। आधार और आधेय का कोई भी सम्बन्ध तो मानना ही है। उसी सम्बन्ध से ही जीव का परमात्मा में लय है।

प्र०—परमात्मा में जीव के अप्यय का तो कोई प्रसङ्ग ही नहीं है। "छान्दोग्य श्रुति ६।८।१ में **स्वमपीतो भवति**" यह लिखा है। तो कैसे परमात्मा में जीव का लय प्रतिपादित है ?

उत्तर—स्व में स्वका लय होता है, यह कहीं देखा नहीं गया है।

प्रश्न—घट में घट का लय देखा जाता है।

उत्तर—घट परमाणु में घट परमाणुओं का लय यही सत्य है। घट के नष्ट हो जाने पर अर्थात् परमाणु रूप हो जाने पर उस प्रकार का व्यवहार होता है। स्व शब्द का व्यवहार में

अर्थ सम्बन्धी भी होता है । अतः सम्बन्धी भूत परमात्मा में जीवका लय होता है,इस प्रकार अर्थका अनुसन्धान करना चाहिये, अतएव सत्‌शब्दवाच्य परमात्मा ही, अन्य नहीं इति १।१।१०। प्रधानं न जगत्कारणमित्यर्थेऽन्येषां वेदान्त वाक्यानां–

❀ सम्मतिमाह–गति सामान्यात् १।१।११ ❀

हरिभाष्यम्–सर्वासूपनिषत्सु सर्वत्रैव चेतनस्य गतिः–प्राप्ति रुपदिष्टा नत्वचेतनस्य प्रधानस्य सामान्येन । गतेः सामान्यं गतिसामान्यं तस्मात् । अस्यां ब्रह्ममीमांसायां समानया एव गत्या भाव्यम् । प्रश्नो वर्तते, केन सह ? ब्रह्ममीमांसोन्मुखैरितरैर्मन्त्रैः सह । के ते मन्त्राः ? "देवो देवायं गृणते वयोधा विप्रो विप्राय स्तुवते सुमेधाः । अजीजनोहि वरुण स्वधावन्नथर्वाणं पितरं देवबन्धुम् ॥ तस्मा उराधः कृणुहि सुप्रशस्तं सखो नो असिपरमं च बन्धुः ॥" (अथर्ववेद ५।११।१)

अर्थ–गृणते स्तुवते, त्वां–त्वं वयोधा–अन्नदाता गतिप्रदाता कान्ति प्रदाता वासि । स्तुवते विप्राय–मेधाविने । विप्र इति मेधाविनाम (निघण्टु ३।१५।१) । त्वं सुमेधाः–परमज्ञानोऽसि । हे स्वधावन् ! स्वयमेव स्वस्य धारणकर्तः वरूण ! वरणीयदेव, देव बन्धुं परमात्म (स्व) सम्बन्धिनमथर्वाणमविनाशिनं पितरं स्वमन्यांश्च पातारं जीवजातं त्वमजीजनः कर्मानुगुणं देहेषु समचारयः संचारयसि च । तस्मै त्वया प्रादुर्भाविताय जीव समूहात्र सुप्रशस्तं राधो धनं ज्ञानं वा कृणुहिदेहि । त्वं नः सखा ३ परमंपरमो बन्धुः सम्बन्धी चासि ।

न त्वदन्यः कवितरो न मेधया धीरतरो वरुण स्वधावन् ।
त्वं ता विश्वा भुवनानि वेत्थ स चिन्नु (वज्जनो मायीविभाय ।।
अथर्व० ५।११।४)

इत्यादि मन्त्रेषु ब्रह्मस्वरूप निरूपण परायणेषु सर्वज्ञचेतनमेव जगत्कर्तृत्यवधारितमिति न जडं कर्तृ । या गतिर्वेदेषु सैव गतिर्मयापीह ब्रह्ममीमांसायामाश्रयणीया । एवञ्च 'जन्माद्यस्ययत' इत्यादि उपनिषत्सुसाधूक्तमस्य जगतो जन्म ब्रह्मण एवेति । इति गति सामान्यादधिकरणम् ।

❀ सम्मतिमाह–गति सामान्यात् १।१।११ ❀

भक्तिभूषणभाष्य–प्रधान जगत् का कारण नहीं है, इस अर्थ में अन्य वेदान्त वाक्यों की सम्मति कहा–गति इत्यादि ।

सर्वत्र ही सभी वेदों में चेतन की प्राप्ति उपदिष्ट है, न कि अचेतन की । गति की समानता को गतिसामान्य कहते हैं अर्थात् गतिसामान्य होने से यह शब्दार्थ हुआ । इस ब्रह्ममीमांसा में समानगति की ही व्याख्या होनी चाहिये ।

प्रश्न–किसके साथ ? उत्तर–ब्रह्ममीमांसा के उन्मुख इतर मन्त्रों के साथ । वे कौन मन्त्र हैं? इसके किञ्चित् प्रमाण यथा–
देवो देवायमिति० ।

तुम अन्नदाता, गतिप्रदाता अथवा कान्तिप्रदाता हो [अतः] तुम्हारी स्तुति की जा रही है । तुम मेधावो [और] परमज्ञानी हो [अतः] तुम्हारी स्तुति की जा रही है । हे स्व के धारणकर्ता वरणीय देव ! देव बन्धु परमात्म सम्बन्धी अविनाशी पितर और

अन्यों के रक्षक को तुमने उत्पन्न किया है और कर्मानुसार [प्राप्त हुये] देहों में तुम संचार करते हो।

तुम्हारे द्वारा उत्पन्न जीव समूह को तुम प्रशस्त धन अथवा ज्ञान प्रदान करो। तुम हमारे सखा और परमबन्धु अर्थात् सम्बन्धी हो। [१।१।११]

अधिकरणोपसंहाररूपश्चायंहेतुः—

❀ श्रुतत्वाच्च १।१।१२ ❀

हरिभाष्यम्—चेतनं ब्रह्मैव जगत्कारणमिति लोके वेदे च सर्वत्रैव श्रुतम्, अचेतनस्य विषये क्वापि न उपरिनिर्दिष्टैः प्रमाणैर्बोधितव्यमेवम्। अन्याश्चापि श्रुतयः। तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः। आकाशाद्वायुः। वायोरग्निः। अग्नेरापः अद्भयः पृथिवी। पृथिव्या ओषधयः। औषधीभ्योऽन्नम्। अन्नात्पुरुषः। (तैत्तीरीय०) न तस्य कश्चित् पतिरस्ति लोकेन चेशिता नैव च तस्य लिङ्गम्। सकारणं करणाधिपाधियो न चास्य कश्चिज्जनिता न चाधिपः॥ एको वशी निक्रियाणां बहूनामेकं बीजं बहुधायः करोति। तमात्मस्थं मेऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम्। स विश्वकृद् विश्वविदात्मयोनिर्ज्ञः कालकालो गुणी सर्वविद्यः। प्रधानक्षेत्रज्ञपतिर्गुणेशः संसार मोक्षस्थिति वन्धहेतुः॥ यो ब्रह्माणं विदधातिपूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै। तं ह देवात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये॥ एतस्माज्जायतेप्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च। (श्वेताश्वतर उ०अ० ६) खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवीविश्वस्य धारिणी (मु०

उ० २।१।३) इत्यादि श्रुतिवाक्येभ्यो चिदचिद्विशिष्टब्रह्मैव जगतः कर्त्ता, धर्ता, पोषणकर्त्ता, संहर्ता च सिद्ध्यति इति ।

❀ श्रुतत्वाच्च १।१।१२ ❀

भक्तिभूषणभाष्य–यह अधिकरण और उपसंहार रूप है–चेतन ब्रह्म ही जगत् का कारण है, यह लोक और वेद में सर्वत्र सुना जाता है, अचेतन के विषय में कहीं नहीं। इस प्रकार का निर्देश पूर्व में दिये गये प्रमाणों से समझ लेना चाहिए। अन्य भी श्रुतियाँ ये हैं—

उस परमात्मा से सर्वप्रथम आकाश की उत्पत्ति हुई। आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथिवी, पृथिवी से औषधियाँ। औषधियों से अन्न और अन्न से पुरुष [प्राणियों] की उत्पत्ति हुई है। [तैत्तिरीय श्रुति] अखिल संसार में उस परमात्मा का कोई स्वामी नहीं है न कोई उसका शासक है और न कोई उसका प्राकृत चिह्न विशेष ही है। वह सबका परम कारण तथा समस्त कारणोंके अधिष्ठाताओं का भी अधिपति है। न कोई उसे उत्पन्न करने वाला है और न ही कोई उसका रक्षक [स्वामी है। अर्थात् वह कर्तुमकर्तुमन्यथा कर्तुं समर्थ है। वह अजन्मा, सनातन सभी चराचर जगत् का शासक और सर्व शक्तिमान है।

अनन्त जीवों का जो अकेला ही शासक है। अंशी होने परमात्मा सक्रिय है तथा अंशमात्र होने से जीव निष्क्रिय कहा गया है। उन जीवों के कर्तृत्त्व, भोग्यत्त्व को जो अपने वश में

किये हुये है। जो एक प्रकृति रूपी बीज को लेकर अनेक रूप, रंग, गुण, कर्म और स्वभाव की विचित्र रचना करता है। उस घट-घट में व्याप्त अन्तर्यामी परमात्मा को अनन्य भक्तिपरायण ज्ञानी भक्त निरन्तर देखते रहते हैं। आत्मस्थम्–सबका प्राण प्रियतम वह है। जो उसे निरन्तर देखता है, उसे उस परमानन्द मय परमात्मा की अनुभूति होती है, अन्य विषयी जीवों को यह आनन्द प्राप्त नहीं होता है। वह विश्व की रचना करने वाला स्वयं अपना कारण है अर्थात् वह स्वयं अपनी इच्छा से अवतरित होता है। वह विश्ववेत्ता सर्वज्ञ है। वह ज्ञानस्वरूप है। वह काल का भी महाकाल है। सबको जानने वाला है। जो अचित् [प्रधान] और चित् [जीवात्मा] का स्वामी है। जो अनन्त गुण वैभव का शासक है। वही सांसारिक जन्म-मरण रूप बन्धन में बाँधने वाला, बाँधकर पोषण करने वाला और उससे मुक्त करने वाला है। वही दण्डाधिकारी, न्यायाधिकारी और कारागार का अधिकारी (जेलर, भी है। सभी कार्यों का एक कारण वही है।

शरणागत रक्षक जो निश्चय ही सर्व प्रथम अपने नाभि कमल से चतुर्मुख श्रीब्रह्माजी को उत्पन्न करते हैं। उत्पन्न करके निश्चित ही उन्हें वेदों का ज्ञान कराते हैं। जो अपने स्वरूप का ज्ञान कराने के लिये उपासकों के हृदय में बुद्धि योग का प्रकाश प्रदान करते हैं, उन वेद वेदान्त वेद्य परम पुरुष, प्रसिद्ध देव, पुरुषोत्तम, अशरण शरण श्रीसीतावल्लभ श्रीरामचन्द्र की

मैं मुमुक्षु [मोक्ष की अभिलाषा से] शरण ग्रहण करता हूँ। आप ही मुझे जटिल सांसारिक बन्धनों से छुड़ायें।

अजन्मा और समस्त विश्व के अन्तर-बाहर व्याप्त सर्वशक्तिमान् तथा जो आप्तकाम हैं, उन्हीं परमेश्वर से प्राण उत्पन्न होता है तथा मन, सभी इन्द्रियाँ, आकाश, वायु, तेज, जल और सम्पूर्ण प्राणियों को धारण करने वाली पृथिवी ये सब उत्पन्न होते हैं। इत्यादि श्रुतिवाक्यों से चिदचिद्विशिष्ट ब्रह्म ही जगत् का कर्त्ता, धर्त्ता पोषणकर्त्ता और संहर्त्ता सिद्ध होता है। इस प्रकार यह ईक्षति अधिकरण समाप्त हुआ। १।१।१२।

❀ आनन्दमयोऽभ्यासात् १।१।१३ ❀

हरिभाष्यम्—अस्मिन् सूत्रे विचार्यते स च प्रकृतो जिज्ञास्यो ब्रह्मापरपर्यायः परमानन्दमयः। आसमन्तात् नन्दयतीति आनन्दः। तस्मिन्नानन्दमये क्लेशलेशोपि न विद्यते। अत्र प्राचुर्यार्थे मयट् प्रत्ययो,न विकारार्थे। आनन्दमयोऽभ्यासश्चेति आनन्दमयोऽभ्यासः तस्मात्। अभ्यसनमभ्यासः। पौनः पुन्येनोच्चारणमप्यभ्यासो भवति! अभ्यासेनैव तस्यानन्दमयतावगम्यते। क्वाभ्यासः? वेदेषु। यथा हि "वसुर्वसुपति हि कमस्यग्ने बिभावसुः। स्यामते सुमतावपि"। (ऋ० ८।४४।२४) "वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम राजा हि कं भुवनानामभि श्रीः। इतो जातो विश्वमिदं विचष्टे वैश्वानरो यतते सूर्येण" (ऋ० १।९८।१) इत्यनयोर्ऋचोः कमस्यग्न इति कं भुवनानामिति चोपदिष्टम्। कं—सुखम्। कमसि—सुखस्वरूपोसि भुवनानां राजा हि कम्—सुखस्वरूपभाव-

नन्दमयम् इत्यर्थः प्राचुर्यं कस्यचिदाधिक्यमेव प्रतिपादमति। आनन्दस्याधिक्येन सहैव ब्रह्मण्यानन्दाभावोपि स्यादथवा कस्य–चिदन्यस्याल्पत्वमपि स्यात्। गुडमयोऽपू इत्युक्ते गुडस्य प्राचुर्यमेव प्रतिपाद्यते, न तु जलाभावोपि। लवणमयः सूप इत्युक्ते लवण-स्याधिक्यमेव सूपेबोध्यते न तु मरीच्यादि सम्बन्धोऽपसार्यते। एवमानन्दमयं ब्रह्म इत्युक्ते निरानन्दस्य लेशस्तु न परिह्रियते। अथवा प्रस्तुतार्थे हि सः। आनन्दः प्रस्तुतो यत्र स आनन्दमयः। इममेवार्थं पुरस्कृत्यानन्दमयोऽभ्यासादिति सूत्रोत्थानम्। एवञ्च सर्वथा ब्रह्मानन्दमयमेव। आनन्दमय इति पुँस्त्वं निर्देशः। ब्रह्मापरपर्यायस्य परमेश्वरस्य सर्वेषां रमयितृत्वाद्रामस्य च संग्रहार्थः। किंयत् ब्रह्मणः केवलं ब्रह्मेत्येकैव नाम नास्ति, बहूनि नामानि। तस्येति निर्देशार्थमानन्दमयइत्यत्र पुँस्त्वोच्चारणम्। आनन्दमयस्यार्थो आनन्द स्वरूप इति। कस्माद्ज्ञायते परमात्मा-नन्दमय इत्याह–अभ्यासात् इति। सैवानन्दस्य मीमांसा भवति (तै०उ० ८।१) इत्यत आरम्भानुवाकान्तमभ्यस्यत आनन्दशब्दः। ततः परं नवमेऽनुवाके तत्रैव प्राह 'आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान्न बिभेति कुतश्चन" इत्यत्रापि ब्रह्मण आनन्दस्वरूपमाह।

न चानन्दं ब्रह्मणो विद्वान इत्यत्र आनन्दशब्दाद्द्वितीया श्रूयते। ब्रह्मण इत्यत्र च षष्ठी। तथा च नास्ति ब्रह्मानन्दयोः सामाना-धिकरण्यम्। भेदिका हि षष्ठी भवति। तर्हि ब्रह्मण आनन्द–स्वरूपतां न गच्छति? तस्य प्रयोगस्य उपनिषत्सु दृष्टत्वात्। अथवा शतं हि षष्ठ्यर्थाः। अभेदार्थापि षष्ठीदृश्यते। कुत्र?

वटस्यवृक्षो, निम्बस्य वृक्ष इत्यादिषु। सर्वथा हि परमेश्वर आनन्दस्वरूप एव। श्रीतुलसीदासेनोक्तम्-

चिदानन्दमय देह तुम्हारी। रहित विकार जान अधिकारी॥

अत एवानन्दस्वरूपे परमात्मनि विकारत्वं नास्ति। चिदानन्दस्वरूपत्वादसौ आनन्दसमुद्रः। तस्मिन्नानन्दसमुद्रे विकारस्यलेशोपि नास्ति। सर्वदानन्दस्वरूपत्वादेव सर्वेषां कार्याणां कारणत्वं विगाहमानोपि निरानन्दतां नावगाहते न वा विकारित्वम् सर्वे विकारा अचित्येव जायन्ते। अचित च परमात्मदेह भूता। परमात्मा च तद्देहिभूतः। देहदेहिनोरभेदसम्बन्धः भवति। प्रकृतिरूपे देहे जायमाना विकारा देहिन्युपचर्यन्ते। यथा-

"काणोऽयंपुरुषः" एवमन्यत्रापि। परमात्मा तु सदानन्दमय एव। अन्योन्तर आत्मानन्दमयः (तै०आ० ५।२) श्रीरामचरितमानसे-

जो आनन्द सिन्धु सुखरासी। सीकर ते त्रैलोक सुपासी॥
सो सुख धाम राम अस नामा। अखिल लोक दायक विश्रामा॥

अर्थात् यः सुखपुञ्जः आनन्दसिन्धुश्च। तस्यानन्दसिन्धोः विन्दुमात्रेण त्रैलोक्यं सुपोषितोस्ति,सैव सुखधामो रामेत्यभिधीयते। अतएव निश्चीयते आनन्दस्वरूपोऽवतारी श्रीरामेऽखिललोकानां विश्रामप्रदायी। इत्यानन्दमयाधिकरणम्।

अथ आनन्दमयाधिकरणम्

❀ आनन्दमयोऽभ्यासात् १।१।१३ ❀

भक्तिभूषणभाष्य–इस सूत्र में विचार किया जा रहा है कि वह जिज्ञास्य ब्रह्म का अपर पर्याय परमानन्दमय है। जो

आनन्द की समृद्धि से परिपूर्ण है, वह आनन्दमय है। उस आनन्द मय में क्लेश का लेश भी नहीं है। यहाँ प्राचुर्यं [अधिकता] के अर्थ में मयट् प्रलय है न कि विकार अर्थ में। इसकी व्युत्पत्ति है-वह अभ्यास आनन्दमय है। पञ्चमी में-आनन्दमय अभ्यास होने से। यहाँ शंका होती है कि मयम् यह नपुंसक लिङ्ग में क्यों नहीं प्रयुक्त हुआ। उत्तर--अभ्यास होने से। पुनः पुनः अभ्यसन् अर्थात् उच्चारण ही अभ्यास है। अभ्यास द्वारा उसकी आनन्दमयता समझी जा सकती है। कहाँ अभ्यास है ? उत्तर वेदों में। जैसे कि—

"वसुर्वसुपतिर्हि०" इत्यादि। **वैश्वानसय सुमतौ स्याम०** इत्यादि इन दोनों ऋचाओं में 'कमस्यग्ने' इसका अर्थ **भुवनो का राजा** यह उपदिष्ट है। क अर्थात् सुख, क हो अर्थात् सुख स्वरूप हो। कुल मिलाकर यह अर्थ हुआ--सुख, स्वरूप आनन्दमय। प्राचुर्य शब्द किसी की अधिकता ही प्रतिपादित करता है। अथवा आनन्द की अधिकता के साथ ही ब्रह्म में आनन्द का अभाव उससे रह सकता है। अर्थात् वह अल्प दुःख वाला भी होगा। यह अपूप [पुआ] गुडमय है ऐसा कहने से अपूप में गुड की अधिकता ही कही जाती है, न कि उसका अभाव भी। यह दाल लवणमय है ऐसा कहने पर लवण की अधिकता ही कही जाती है, मिर्च--मसाला का सम्बन्ध दूर नहीं बताया जाता है। इसी प्रकार आनन्दमय परमेश्वर है, यह कहने से ब्रह्म आनन्द वाला है, इतना तो सबको हो सकता है किन्तु उसमें कुछ आनन्द का अभाव भी है, यह ज्ञान भी हो सकता है। उत्तर—

अथवा ऐसा समझे कि यहाँ विकारार्थक मयट् प्रत्यय नहीं है। अपितु यहाँ उसका अर्थ 'प्रस्तुत' है। जहाँ आनन्द प्रस्तुत है, उसे आनन्दमय कहते हैं। इसी अर्थ को स्वीकार करके इस सूत्र का प्रारम्भ हुआ है।

आनन्दमय यह पुंस्त्व निर्देश है। इस प्रकार यह सिद्ध हुआ कि वह ब्रह्म सर्वथा आनन्दमय अर्थात् आनन्द स्वरूप ही है। ब्रह्म के दूसरे पर्याय, सभी के हृदय में रमण करने वाले, परमेश्वर श्रीराम के संग्रहार्थ है, क्योंकि ब्रह्म का केवल ब्रह्म यह एक ही नाम नहीं है। उसके बहुत नामों के निर्देश हेतु **आनन्दमयः** यह पुंस्त्व उच्चारण हुआ है। इसीलिये आनन्दमय का अर्थ आनन्द स्वरूप है। प्रश्न--वह परमानन्दमय है, यह कैसे ज्ञात है ? अतः कहते हैं— उ०--अभ्यास से। [वह यह आनन्द सम्बन्धी मीमांसा [विचार] आरम्भ होता है। तैत्ति० २।८।१] यहाँ से आरम्भ करके अनुवाक् के अन्त तक आनन्द का अभ्यास किया गया है। इसके बाद वहीं नवें–अनुवाक् में कहा—उस ब्रह्म के आनन्द को जानने वाला [महापुरुष] किसी से भी भय नहीं करता। यहां भी ब्रह्म को आनन्दमय कहा गया।

प्रश्न–"आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान्" इस श्रुति वचन में आनन्द शब्द से द्वितीया विभक्ति सुनी जाती है और ब्रह्म यहाँ षष्ठी है। और ब्रह्म और आनन्द में समानाधिकरण समास नहीं है, क्योंकि षष्ठी विभक्ति भेदिका होती है। तो ब्रह्म की आनन्द की मयता अर्थात् आनन्द स्वरूपता नहीं सिद्ध हुई।

उत्तर-आनन्दस्वरूपता उपनिषदों में दृष्ट होने से,समाधान सत्य है। अथबा ऐसा समझें, षष्ठी विभक्ति के सैकड़ों अर्थ होते हैं। अभेदार्थ भी षष्ठी दृष्ट है [और वह श्रौत है]।

प्रश्न--कहाँ दृष्ट है ? उ०--जैसे कहा जाता है--"वट का वृक्ष, निम्ब का वृक्ष" इत्यादि वाक्यों में जो वट है, जो निम्ब है, वही वट वृक्ष है, निम्ब वृक्ष है। [अतः] सर्वथा ही परमेश्वर आनन्दस्वरूप हो है। श्रीतुलसीदासजी ने कहा—**चिदानन्दमय०** इत्यादि। इसीलिये आनन्दस्वरूप परमात्मा में विकारधर्म नहीं है।

ब्रह्म श्रीराम चिदानन्दस्वरूप हैं। उस आनन्द समुद्र में विकार का लेश भी नहीं है। सर्वदा आनन्द का स्वरूप होने से ही वह सभी कार्यों का कारण होता हुआ भी निरानन्द नहीं होता अथवा विकारवान् भी नहीं होता है। सभी विकार अचित् में ही होते हैं। और अचित् परमात्मा का शरीर है। परमात्मा उसका शरीरी है। देह और देही में सम्बन्ध होता है। अतः प्रकृति [अचित्] रूप देह में होने वाले विकार देही--ब्रह्म में व्यावहारिक रूप से मान लिये जाते हैं। जैसे कि "यह काना पुरुष है।" [यहाँ मात्र एक नेत्र हीनता]। ऐसा अन्याय भी जानना चाहिए। परमात्मा तो सदा स्वतः आनन्दमय ही है। तैत्तिरीय श्रुति में कहा गया--तस्माद्वा एतस्माद्विज्ञानमयादन्योन्तर आत्मानन्दमयः।

अर्थात् निश्चय ही उस पूर्व में कहे हुये इस विज्ञानमय जीवात्मा से भिन्न अन्तर्यामी परमात्मा आनन्दमय है, ऐसा अनेक

...ार श्रुति विदित है। श्रीरामचरितमानस में-'जो आनन्द सिन्धु' इत्यादि कहा गया है। अर्थात् जो सुखपुञ्ज और आनन्दसिन्धु है, उस आनन्द सिन्धु के एक विन्दु से त्रिलोकी सुपोषित है। वही सुखधाम रामनाम से प्रसिद्ध है। अतः यह निश्चित है कि आनन्दस्वरूप अवतारी श्रीराम अखिल लोकों के विश्राम प्रदाता हैं। उस आनन्द की मीमांसा इस प्रकार है—

युवा स्यात् साधु युवाध्यायक आशिष्ठो द्रढिष्ठो बलिष्ठस्तस्येयं पृथिवी सर्वा वित्तस्य पूर्णास्यात्। स एको मानुष आनन्दः।

कोई सुन्दर आचरण वाला युवक हो, वेदों का [ब्रह्मचर्य पूर्वक] अध्ययन कर चुका हो। शासन में पूर्ण प्रशिक्षित हो। उसके सम्पूर्ण अवयव और इन्द्रियाँ सर्वथा पुष्ट स्वस्थ) हों। वह शारीरिक और मानसिक रूपसे पूर्ण बलवान् हो, उसके पश्चात् यह सम्पूर्ण पृथिवी सभी सम्पत्तियों से परिपूर्ण उसे प्राप्त हो जाये, तो वह मनुष्यलोक का एक आनन्द है। **ते ये शतं मानुष आनन्दाः। स एको मनुष्यगन्धर्वाणामान्गः। श्रोत्रियस्य चाकामततस्य।**

वे जो मनुष्यलोक सम्बन्धी एक सौ आनन्द हैं, वह मनुष्य गन्धर्वों का एक आनन्द होता है। और वह आनन्द जिसका अन्तःकरण विषय भोगों की कामनाओं से दूषित नहीं हुआ है, ऐसे श्रोत्रिय [वेदज्ञ] पुरुष को अनायास प्राप्त होता है। **ते ये शतं मनुष्यगन्धर्वाणामानन्दाः, स एको देवगन्धर्वाणामानन्दः। श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य।**

पूर्वोक्त जो मनुष्य गन्धर्वों के एक सौ आनन्द हैं, वह देव जाति के गन्धर्वों का एक आनन्द है। और वही वासनाओं से दूषित चित्त न होने वाले श्रोत्रिय को स्वाभाविक रूप से प्राप्त होता है। **ते ये शतं देवगन्धर्वाणामानन्दाः, स एकः पितृणां चिरलोकलोकानामान्दः श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य।**

वे पूर्वोक्त देव जातीय गन्धर्वों के एक सौ आनन्द हैं, वह चिरस्थायी पितृलोक को प्राप्त हुये पितरों का एक आनन्द है। जो विषय वासनाओं से निरासक्त वेदज्ञ पुरुष को स्वभावतः प्राप्त है। ते ये शतं पितृणां चिरलोकलोकानामानन्दाः,स एक आजान-जानां देवानामानन्दः। श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य।

पूर्वोक्त ये जो चिरस्थायी पितृलोको प्राप्त हुये पितरों के एक सौ आनन्द हैं, वह आजानज नामक देवताओं का एक आनन्द है। और वह उस लोक तक के भोगों से अदूषित वेदवेत्ता को स्वाभाविक प्राप्त है। **ते ये शतमाजाजजानां देवनामानन्दाः, स एकः कर्मदेवानांदेवानामानन्दः। येकर्मणादेवानवियन्ति। श्रोत्रि-यस्य चाकामहतस्य।**

वे पूर्वोक्त जो आजानज नामक देवों के एक सौ आनन्द है, वह उन कर्मदेव नामक देवताओं का एक आनन्द है। जो वेदोक्त कर्मो से देवों को प्राप्त हुये हैं और वह उस लोक तक की वासनाओं से मुक्त है, वह वेदज्ञ पुरुष को स्वतः प्राप्त है। संक्षेप में उन कर्मदेव नामक देवताओं के एक सौ आनन्द को राशि एकत्र करने पर जितना आनन्द होता है वह एक स्वभाव

सिद्ध देवताओं का एक आनन्द है। और इस प्रकार सौ देवताओं का आनन्द मिलकर एक इन्द्र के आनन्द के तुल्य होता है। एक सौ इन्द्र के आनन्द की तुलना एक वृहस्पति के आतन्द से है। वृहस्पति के सौ आनन्द मिलकर एक प्रजापति के आनन्द के समान होता है। इसी प्रकार सौ प्रजापति का आनन्द एक ब्रह्मानन्द के तुल्य है।

ते ये शतं प्रजापतेरानन्दाः, स एको ब्रह्मण आनन्दः।

आजान एक स्थान देवलोक विशेष है। वह परमात्मा मनुष्य में, सूर्य में अन्तर्यामी रूप से रहता है। ऐसा जो जानता है वह मनुष्य शरीर को छोड़कर क्रमशः अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय आत्मा को प्राप्त होता है। अर्थात् इन पाँचों के जो आत्मा अर्थात् स्वरूप हैं उन परमात्मा को प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार अन्तिम लक्ष्य ब्रह्मानन्द अथवा परमानन्द की प्राप्ति ही है। सांसारिक आनन्द उसी का आभास है, किन्तु विषयी लोगों को यही सुख सर्वस्व समझ पड़ता है। गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी महाराज ने इसी ब्रह्मानन्द को रामानन्द कहा है। उनकी आनन्दमीमांसा लोकपरक श्रीराम में अनुभव करा रही है। जब उस आनन्द का अवतार हुआ तो–

दशरथ पुत्र जन्म सुनि काना। मानहुं ब्रह्मानन्द समाना॥

माया मोह से परे, ज्ञान और वाणी तथा इन्द्रियों से अतीत वह सुखपुञ्ज आनन्द स्वरूप परमात्मा श्रीराम दम्पती श्रीदशरथ कौशल्या के प्रेमवशवर्ती होकर शिशुलीला कर रहे हैं।

सुख संदोह मोह पर ज्ञान गिरा गोतीत ।
दंपति परम प्रेम बस कर सिसु चरित पुनीत ।।

अन्न, प्राण आदि कोशों में जो पाँचवें कोश का वर्णन किया गया है, वही आनन्दमय कोश का स्वामी परमात्मा श्रीराम जब श्रीअवध की सीवकाओं में अपने अनुजों सहित रूपामृत का दर्शन प्रदान करते हैं तो सभी आबाल, बृद्ध, नर-नारी स्नेह शिथिल हो जाते हैं, क्योंकि वे प्राण प्यारे जो हैं। प्राण से प्यारा केवल ब्रह्मानन्दस्वरूप है, अतः—

जिन्ह बीथिन्ह विहरहिं सब भाई । थकित होहिं सब लोग लुगाई ।।
कोशलपुरवासी नर नारि वृद्ध अरु बाल ।
प्रानहुँ ते प्रिय लागहिं सब कहुँ रामकृपाल ।।

श्रीकाकर्षि के अनुभव से निर्गुण ब्रह्मानन्द की अपेक्षा इस शिशुचरित में कई गुना आनन्द प्राप्त हो रहा है। यथा—

जेहि सुख लागि पुरारि असुभ बेष सिव कृत सुखद ।
अवधपुरी नर-नारि तेहि सुख महुँ संतत मगन ।।
सोई सुख लवलेश जिन्ह बारक सपनेहुँ लहेउ ।
ते नहिं गनइ खगेस ब्रह्म सुखहिं सज्जन सुमति ।।

श्रीकाकर्षि चिरजीवी लोमश ऋषि के शिष्य हैं। नीलगिरि पर रहकर निरन्तर एक शरीर से श्रीरामकथा का गान कर रहे है। सौ पचास वर्षो से नही अपितु २७ कल्पों से उसकी कृपा से यह अनुभव प्राप्त है उन्हें। सहज ब्रह्मज्ञानी महाराज

श्रीजनकजी का भी ब्रह्मानन्द तिरोहित हो गया—छिप गया, जब श्रीरामानन्द सिन्धु में निमग्न हो गये। वे महर्षि श्रीविश्वामित्र से जिज्ञासा करते हैं—

कहहु नाथ सुन्दर दोउ बालक। मुनिकुल तिलक कि नृप कुल पालक॥
ब्रह्म जो निगम नेति कहिगावा। उभय वेष धरि की सोइ आवा॥
सहज विराग रूप मन मोरा। थकित होत जिमि चन्द चकोरा॥
इन्हहिं विलोकत अति अनुरागा। बरबस ब्रह्म सुखहिं मन त्यागा॥

ऐसे आनन्द श्रीरामचन्द्र को जामाता रूप में प्राप्त कर महाराज श्रीजनकजी प्रार्थना कर रहे हैं-जो भूतभावन श्रीशिव और मुनियों हृदय का राजहंस है। योगीजन जिसके दर्शन हेतु संयमनियमादि पूर्वक समाधि लगाते हैं। जो व्यापक, अलख, अविनासी, निर्गुन और गुणराशि सच्चिदानन्द ब्रह्म है। अनुमान प्रमाण वाले, जिसका तर्क नहीं कर सकते। जो तीनों कालमें सर्वदा और सर्वथा निर्विकार है। मन सहित वाणी जिसका स्पर्श नहीं कर सकती। वेदवाणी से भी परे वे ही समस्त सुखों के मूल आनन्द सिन्धु आप मेरे नेत्रों के विषय हुये। इस प्रकार आपके अनुकूल होने पर जीव को सब लाभ ही लाभ है।

राम करौ केहि भाँति प्रशंसा। मुनि महेश मन मानस हंसा॥
करहिं जोग जोगी जेहि लागी। कोह मोह ममता मद त्यागी॥
व्यापक ब्रह्म अलख अविनासी। चिदानन्द निरगुन गुनरासी॥
मन समेत जेहि जान न वानी। तरकि न सकहिं सकल अनुमानी॥
महिमा निगम नेति कहि कहई। जो तिहुँकाल एकरस अहई॥

नयन विषय मोकहुँ भयउ सो समस्त सूखमूल ।
इहइ लाभ जग जीव कहँ भये ईश अनुकूल ।।
इति 'आनन्दमयोऽभ्यासात्' समाप्त ।।१।१।१३।।

ब्रह्मणो आनन्दमयतां दूषयता समाधानं करोति --

❀ विकारशब्दान्नेति चेन्न प्राचुर्यात् १।१।१४ ❀

हरिभाष्यम्–किन्त्वस्मिन् सूत्रे परमात्मानन्दमयो नास्ति। कथन्नस्ति ? इति विचार्यते । अस्मिन् सूत्रे विकारशब्दं दृष्ट्वा विचार्यते–आनन्दमय इत्यत्र मयट् प्रत्ययो विकारार्थः । पाणिनिनाउक्तम् "नित्यं बृद्धशरादिभ्यः" (४।३।४) इति सूत्रेण मयड्विधानं क्रियते । अत्रानन्दशब्दो वृद्धोऽस्ति । अतः विकारार्थो मयड्ब्रह्मणि विकारत्त्वमुत्पाद्य विकारित्वं प्रकाशयति । परन्त्वत्र विकारार्थे मयट्प्रत्ययो न वर्तते । केन प्रकारेण ज्ञायते ? प्राचुर्यात् । प्राचुर्यार्थे मयड्भवति । "तत्प्रकृतिवचने मयट्" (पा० ५।४।२१) इति व्याकरणसूत्रमस्ति । अतोऽत्रार्थो वर्तते–आनन्दमय इत्यत्र आनन्दप्रचुर इत्यर्थः । प्रचुरस्यार्थः अधिकं भवति । ब्रह्मणि आनन्दस्य प्राचुर्यं भवितुमर्हति, परन्तु निरानन्दस्यापि स्थास्यति एव । उत्तरयति–नैवानन्दशब्दस्योपनिषत्सु पौनः पुन्येनावृत्तिः अभूत् । अस्मादसावनन्द एव वर्तते । नास्ति निरानन्दः । प्रश्नः वर्तते-अग्रिमे सूत्रे विकारशब्दादित्यस्य किं प्रयोजनम् ? विकारशब्दस्य पाठः श्रुतौ कुत्रापि दृश्यते, कथं तर्हि विकारशब्दस्य आदावुक्तिः विज्ञाप्यते–विकारार्थे मयटि कृते उत्पन्न आनन्दशब्दो विकारशब्दे नास्ति । इमं स्पष्टयितुं

प्राचुर्यादिति हेतुः । प्राचुर्यार्थश्च यादृक् इष्टः, साधुनैव पूर्वसूत्रे प्रदर्शितः । अत्र "अथातो ब्रह्मजिज्ञासा" इत्यत्र प्रसङ्गः सञ्चलति तच्च नपुसकं प्रयुक्तम् । "आनन्दमय" इति पुँस्त्वनिर्देशः कथम्? विज्ञाप्यते-ब्रह्मशब्दार्थकेश्वरपरमेश्वरपरमात्मेत्यादिशब्दानुसन्धानात् पुंस्त्वनिर्देशः । अस्य शब्दस्य विषये गोस्वामिपाद श्रीतुलसीदासेन श्रीरामचरितमानसे चौपाई वर्णिता–

सकल विकार रहित गतभेदा । कहि नित नेति निरूपहिं वेदा ।।
राम ब्रह्म परमारथ रूपा । अविगत अलख अनादि अनूपा ।।

अत एव भगवता व्यासेन स्वब्रह्मसूत्रे रहसि ब्रह्मरूपः श्रीरामो निरूपितः । भगवद्भजनप्रवणत्वात् ब्रह्मेश्वरपरमात्मप्रभृतिनामानि भणितानि । आनन्दस्वरूपोऽऽनन्दमय एव । इति श्रुतौ सर्वत्र प्रपञ्चितम् ।१।१।१४ इति ।

❀ विकारशब्दान्नेति चेन्न प्राचुर्यात्१।१।१४ ❀

भक्तिभूषणभाष्य–इस "आनन्दमयोऽभ्यासात्" सूत्र में परमात्मा आनन्दमय नहीं है। प्रश्न–क्यों नहीं है ? यह विचार किया जा रहा है–इस सूत्र में विकारशब्द को देखकर विचार किया जा रहा है कि **आनन्दमयः** यहाँ मयट् प्रत्यय विकारार्थ है। यहाँ पाणिनि की स्मृति आती है । 'नित्य वृद्धशरादिभ्यः' [४।३।४] इस सूत्र से मयट् विधान किया गया है। यहाँ आनन्द शब्द वृद्ध है । इस कारण से विकारार्थ मयट् प्रत्यय ब्रह्म में विकारत्व उत्पन्न कर ब्रह्म को विकारित्व प्रकाशित करता है। परन्तु यहाँ विकार अर्थ में मयट् प्रत्यय नही है । प्र०-कैसे ज्ञात

होता है ? उ०-प्राचुर्य अर्थ में ययट् प्रत्यय होता है। व्याकरण सूत्र है—

"तत्प्रकृति वचने मयट्" [पा० ५।४।२१] अतः यहाँ अर्थ है, आनन्दमय अर्थात् आनन्द की प्रचुरता। प्रचुर का अर्थ अधिक होता है। प्र०-ब्रह्म में आनन्द की अधिकता योग्यता भले रहे परन्तु वह निरानन्द संयुक्त भी होगा ही। उत्तर-नहीं, उपनिषदों में आनन्दशब्द की पुनः पुनः उक्ति हुई है। अतः वह आनन्द ही है, निरानन्द नहीं। प्रश्न-अग्रिमसूत्र में पठित **विकारशब्दात्** आदि इसका क्या प्रयोजन है ? उत्तर–श्रुतियों में विकारशब्द कहीं भी पठित नहीं है। तब **विकारशब्दात्०** इस सूत्र के कहने का क्या प्रयोजन था ?

उत्तर-विकार अर्थ में मयट् प्रत्यय करने पर जो आनन्दमय शब्द सिद्ध होता हैं वह विकारशब्द से सम्बोधित होता है। यहाँ आनन्दशब्द विकारशब्द में नहीं आता है यही स्पष्ट करने हेतु **प्राचुर्यात्** यह हेतु दिया गया है। और प्राचुरशब्द का यहाँ पर क्या अर्थ अभीष्ट है, यह अभी पूर्व सूत्र में कहा गया है। प्रश्न–"अथातो ब्रह्मजिज्ञासा" इस सूत्र से ब्रह्मशब्द का प्रकरण प्राप्त है और वह नपुंसक लिङ्ग में प्रयुक्त है। तो **आनन्दमयः** यह पुँस्त्व निर्देश क्यों दिया गया ? उत्तर-ईश्वर, परमेश्वर, परमात्मा इत्यादि ब्रह्मशब्द के वाचक हैं। उसी शब्दानुसन्धान के कारण यहाँ पुँस्त्व निर्देश है। इस सूत्र के विषय में गो वामि पाद ने अपने श्रीरामचरितमानस में चौपाई लिखी है—

"सकल विकार रहित गतभेदा" इत्यादि । इसीलिये श्रीभगवान् व्यासजी ने अपने ब्रह्मसूत्र में अन्तरङ्ग रूप से ब्रह्म रूप श्रीराम को ही निरूपित किया है। भगवद्भजन की अतिशयता से ब्रह्म, ईश्वर, परमात्मा आदि नाम कहे गये हैं । आनन्द का स्वरूप आनन्दमय ही होता है श्रुतियों में सर्वत्र प्राप्त होता है, इति ।१।१।१४।

अपरोहेतु आनन्दमय ब्रह्मविषये—

❁ तद्धेतु व्यपदेशाच्च १।१।१५ ❁

हरिभाष्यम्-तस्यानन्दस्य हेतुः तद्धेतुः । तस्य व्यपदेशः तद्धेतु व्यपदेशः, तस्मात् । तद्ब्रह्मैवानन्दस्याखिलस्य हेतुरिति व्यपदेशों व्यवहारोपि दृश्यते । चकारस्याप्यर्थात्र । तैत्तिरीयोपुनिषदि आनन्दवल्त्यां हेतु व्यपदेशः श्रूयते । तस्मादव्यानन्दमयः परमात्मैव । अतएव प्राणदिकस्य हेतुरानन्दएव । स च ब्रह्मैवेति । आन्दमयोपि ब्रह्मैव, नात्र जीव प्रसङ्गः । तस्मादानन्दानन्द-मयोरेकार्थत्वात् पूर्वं समर्थित्वाच्च नात्र परमात्म पक्षे शंकापङ्क-लेशोऽपि । हेनुरत्र निश्चीयते-रसो वै सः । रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति । को हि वान्यत्कः प्राण्याद् यदेष आकाश आनन्दो न स्यात् । एष ह्येवानन्दयति । (तै०आ० वल्ली ७।२)

अत्र सकलजीवेभ्य आनन्ददाने परमात्मा हेतुः, तस्मादा-नादानन्दप्रचुरो भवति । अतः परमात्मैवानन्दमयऽत्यत आह-तद्धेतु व्यपदेशाच्च । अपिच "आनन्दो ब्रह्मेति व्यज्ञानात् ।

आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते । आनन्देन जातान जीवन्ति, आनन्दं प्रत्यभिसंविशन्ति" (तै०उ० ३।६) इति श्रुत्या परमात्मनः आनन्दमयस्देव जगद्व्यापारः न तु मुक्तात्मनो जीवात् । एतस्मान्निश्चीयते यत् आनन्दमयः परमात्मैव भवितु मर्हति, जीवकदम्बस्तमनुभवति केवलं, नतु सृष्ट्यादिकार्यं कर्तुं शक्यते ।

आनन्दमय ब्रह्म के विषय में अपर हेतु कह रहे हैं—

❁ तद्धेतु व्यपदेशाच्च १।१।१५ ❁

भक्तिभूषणभाष्य—तद्धेतुः-उस आनन्द का हेतु । उस आनन्द के हेतु का व्यपदेश, यह सूत्र का शब्दार्थ है, पञ्चमी में प्रयोग है । यहाँ चकार का अर्थ 'भी' होता है । इसका तात्पर्य है-अखिल आनन्द का हेतु वह ब्रह्म ही है, ऐसा व्यवहार भी देखा जाता है । तैत्तिरीय उपनिषद् की आनन्दवल्ली में इस हेतु [कारण] का व्यवहार सुना जाता है । अतः आनन्दमय परमात्मा ही है । इसीलिये कहा गया कि प्राणन आदि का हेतु आनन्द ही है और वह आनन्द ही ब्रह्म है । आनन्दमय शब्द भी ब्रह्म का वाचक है । यहाँ जीव का प्रसंग नहीं है । क्योंकि आनन्द और आनन्दमय इन दोनों शब्दों के एकार्थक होने से और इन अर्थों के पूर्व समर्थित होने से यहाँ परमात्म पक्ष की शंका का लेश भो नहीं है ।

उस हेतु को यहाँ निश्चित करते हैं—'**रसो वै सः ... ... आनन्दयति** । [तै० उ० आन० वल्ली ७।२] वही रसामृतसिन्धु

है क्योंकि यह जीवात्मा इस रस को प्राप्त कर आनन्द युक्त हो जाता है। यदि यह आकाश की भाँति व्यापक आनन्दस्वरूप परमात्मा न होता तो कौन जीवित रह सकता और कौन प्राणों की क्रिया [चेष्टा] कर सकता। निःसन्देह यह परमात्मा ही सबको आनन्दित करता है।

यहाँ सकल जीवों के आनन्द प्रदान में परमात्मा हेतु है, इसलिये दानदातृत्व के आनन्द की अधिकता उसमें आती है। अतः परमात्मा ही आनन्दमय है, इस हेतु कहा—**तद्धेतु व्यपदेशाच्च** और भी **आनन्दो ब्रह्म... ...सम्विशन्ति**। [तै० भृगुवल्ली ३।६] "आनन्द ही ब्रह्म है, यह विशेष अथवा पूर्ण रूप से जाना। क्योंकि निश्चित ही आनन्द से ही ये [चराचर] प्राणी उत्पन्न होते हैं। उत्पन्न होकर आनन्द से ही जीते हैं तथा इस लोक से प्रयाण करते हुये अन्त में आनन्द में प्रवेश कर जाते हैं।"

इस श्रुति के प्रमाण से यह स्पष्ट हो जाता है कि आनन्दमय परमात्मा से ही जगत् के सृष्ट्यादि व्यापार होते हैं, न कि मुक्तात्मा जीव से। जीव समूह तो मात्र उस आनन्द का अनुभव करता है, सृष्टि आदि करने की योग्यता उसमें नहीं होती है। उसका अर्थ आनन्द है। काव्य तथा साहित्य शास्त्र में वर्णित शृंगार आदि नौ रसों और भक्ष्य, भोज्य चोष्य लेह्य इन भोजनीय षड्रसों (कटु, कषाय, मधुर, अम्ल, लवण, तिल) से भिन्न वह ब्रह्मानन्दरस अनन्त जन्मों की तपस्या, साधना से प्राप्त होता है।

जो मोहिं राम लागते मीठे ।

तौ नवरस, षडरस रस अनरस होइ जाते सब सीठे ।।

सांसारिक विषय भोग वासनाओं में जो आनन्द दिखाई देता है, यह वास्तविक आनन्द नहीं है, बल्कि उस आनन्द का आभास है, झलक है । आनन्द का अर्थ तृप्ति है । तृप्ति हो जाने पर यह मन एक पदार्थ से दूसरे पदार्थ की ओर भटकता नहीं है । संसार में यही देखा जाता है कि ये इन्द्रियाँ भले बलहीन हो जायें किन्तु मन सदा बलवान् बना रहता है । इस संसार में जो पैदा होते हैं, उन सबके हृदय में तृष्णा की आग धधकती रहती हैं । वह कैसे बुझे, इसके लिये संयमनियम भी करते हैं कि उसकी सीमा को लाँघना अशक्य हो जाता है । हिरण्यकशिपु, रावण ऐसे तपस्वी और त्रिभुवन विजयी भी इसे जीत न सके । इसी मृगतृष्णा रूपा विषयासक्ति से जीव बँधता है जो सभी दोषों का मूल है । श्रीव्यासजी कहते हैं—

यत्पृथिव्यां ब्रीहियवं हिरण्यं वशपस्त्रियः ।

न दुह्यन्ति मनः प्रीतिं पुंसः कामहतस्यते ।।

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ।

हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते ।। (श्रीमद्भा० ९।१९।१३-१४)

पृथिवी पर जितने अन्न, स्वर्ण, पशु और स्त्रियाँ हैं वे सभी मिलकर कामनाओं से आसक्त एक मनुष्य के भी मन को सन्तृप्त नहीं कर सकती, क्योंकि विषयों के सेवन से कामनाओं की अग्नि कभी शान्त नहीं होती । जैसे अग्नि में घृत की आहुति पड़ने

से वह और अधिक प्रज्वलित होता है। गोस्वामीजी ने भी कहा है—

बुझै न काम अगिनि तुलसी कहुँ विषय भोग बहुधीते।

अनेक प्रकार के यज्ञ, दान, तप आदि से भी वह पूर्ण तृप्ति अर्थात् आनन्दमय परमात्म सुख की नित्यतृप्ति नहीं होती। महाकवि विद्यापति कहते हैं—

जनम अवधि हम रूप निहारेनु नयन न तिरपित भेला।

यह भक्ति की पिपासा है। उस रस के आस्वादन के दो साधन हैं–जिज्ञासा और पिपासा। जिज्ञासा ज्ञानपरक है और पिपासा प्रेमपरक है। तृप्त होते हुये मी जो अतृप्ति बनी रहे, वही ब्रह्मानन्द है। वह आनन्द सभी को प्राप्त है, किन्तु माया के कारण उसका अनुभव नहीं होता है। कामनाओं के तर्पण से हृदय में स्थित उस आनन्द का व्यय हो जाता है, अतः जीवन निःसार हो जाता है! गोस्वामीजी महाराज कहते हैं—

जिव जब तें हरि तें बिलगान्यो। तब ते देह, गेह निज जान्यो॥
माया बस स्वरूप बिसरायो। तेहि भ्रम ते दारुन दुख पायो॥
पायो जो दारुन दुसह दुख, सुखलेस सपनेहुँ नहिं मिल्यो।
भव सूल सोक अनेक जेहि तेहि पंथ तू हठि हठि चल्यो॥
बहु जोनि जन्म, जरा, विपति, मतिमन्द हरि जान्यो नहीं।
श्रीराम विनु विश्राम मूढ! विचारि लखि पायो कहीं॥
आनन्द सिन्धु मध्य तव वासा। विनु जनि कत मरसि पियासा॥
मृग भ्रमवारि सत्य जिय जानी। तहँ तू मगन भयो सुखमानी॥

तहँ मगन मज्जसि पान करि त्रयकाल जल नाहीं जहाँ ।
निज सहज अनुभव रूप तब खल भूलि चलि आयो तहाँ ।।
निर्मल निरंजन निर्विकार, उदार सुख तैं पर्‌यौ ।
निःकाज राज विहाय नृप इव स्वप्न-कारागृह पर्‌यौ ।।

इसीलिये करुणमयी श्रुतियाँ सचेत करती हैं कि–'एषह्येवानन्दयति ।' उस परमात्मा के विना आनन्दप्रद है कौन ?

यदि यह समझते हो कि मैं उस आनन्दरस सिन्धु को नहीं मानता, तो यह भी समझ लो कि भौतिक वस्तुओं में जिस आनन्द को क्षणिक अनुभूति होती है, वह उसी सिन्धु का एक विन्दु है । यदि वह न होती यह कहाँ से प्राप्त होगा ? भौतिक पदार्थ विनाशशील है, अतः नश्वर कहा जाता है और वह नित्य है, शाश्वत है, अतः यह कहा–**आनन्दद्धयेव** इत्यादि ।

अपने पिता वरुणदेव से महर्षि भृगु ने उस आनन्दमय ब्रह्म की जिज्ञासा की थी । उन्होंने इसका ज्ञान दिया और अन्त में भृगु ऋषि को जो अनुभूति हुई, वही यहाँ कहा अतः भृगुवल्ली नाम से यह प्रकरण प्रसिद्ध है । वल्ली का अर्थ है, स्वामी, प्रभु शासक और साधु इति ।।१।१। ५।।

केवलो मयट्' प्रत्ययः प्रचुरतायाः बोधकत्वात् अत्र 'आनन्दमयः' शब्दः ब्रह्मणोः वाचकः वर्तते यावान्नास्ति । परन्तु–

❀ मान्त्रवर्णिकमेव चगीयते १।१।१६ ❀

हरिभाष्यम्–मन्त्राणां वर्णा मन्त्रवर्णाः । अस्मिन् सूत्रे मन्त्रशब्द ग्रहणेन वेदानांमुपनिषदानाञ्च ग्रहणं भवतः । मन्त्रवर्णे

उदितं मन्त्रवर्णिकम् । 'ब्रह्मविदाप्नोतिपरम्' अत्र ब्रह्मैव प्रकृतम् । अतः सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्मैव ।

यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन् ।

सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणः विपश्चिता । (तै० २।१)

अयंभावः–ब्रह्म सत्य स्वरूपमस्ति ! ज्ञानस्वरूप अनन्तश्च विद्यते । असौ ब्रह्म विशुद्ध आकाशस्वरूपं परमधाम्नि निवसन्नेव सर्वेषुहृदिरूपसुगुहायां प्रच्छन्नोस्ति योजानति । यः एवं जानाति असौ ब्रह्म ब्रह्मणः सह समस्त भोगान्अनुभूयते । अनेन मन्त्रेण वर्णितं ब्रह्म अत्र अस्मिन् सूत्रे 'मान्त्रवर्णिकं' शब्देनाभिहितम् । येन प्रकारेण उक्त मन्त्रे तद् परब्रह्म सर्वान्तरात्माभिधत्तम् । तेनैव प्रकारेण ब्रह्मण ग्रन्थेषु 'आनन्दमयः' शब्दं सर्वेषमन्तरात्मानं निगदितम् । एतस्मात् एवमेवोचितं भविष्यति यत आनन्दमयः, शब्दः अत्र ब्रह्मैव वाचकः वतर्ते अन्यः कश्चित् नैव । "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" इत्यत्र ब्रह्मैव प्रकृतम् । "तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूत" इत्यत्र मन्त्रे ब्रह्मैवात्रन्दमयः इति प्रतिबोधितम् ।।१।१।१६।।

केवल मयट् प्रत्यय प्रचुरता का बोधक होने से यहाँ 'आनन्दमय' शब्द ब्रह्म का वाचक है, परन्तु–

❀ मान्त्रवर्णिकमेव चगीयते १।१।१६ ❀

मन्त्रों के वर्ण मन्त्रवर्ण है । एवकारो अन्ययोम व्यवच्छेको वर्तते । अर्थात् एव शब्द निश्चर्याक है । इस सूत्र में मन्त्र शब्द के ग्रहण से वेदों और उपनिषदों का ग्रहण होता है। अतः अर्थ यह

हुआ कि मन्त्रवर्ण से प्रकाशित "मान्त्रवर्णिक" यह सिद्ध होता है। 'ब्रह्मज्ञानी परमपद को प्राप्त होता है' इस श्रुति से ब्रह्म ही प्रकृत [मूल] है। अतः 'सत्य, ज्ञान और अनन्त' पद ब्रह्म का ही वाचक है। **'यो वेद निहितम्'** इत्यादि श्रुति का भाव यह है—

"ब्रह्म सत्य स्वरूप है। ज्ञानस्वरूप और आनन्दस्वरूप है। विशुद्ध आनन्दस्वरूप वह ब्रह्म परमधाम [त्रिपाद् विभूति] में निवास करते हुये सभी के हृदय रूप गुहा में प्रच्छन्न है। जो मनुष्य यह जानता है वह उस विज्ञानानन्द स्वरूप ब्रह्म के साथ साथ समस्त कामो भोगों का अनुभव करता है। इस मन्त्र द्वारा कीर्तित ब्रह्म 'मान्त्रवर्णिक' कहा गया है।

इस प्रकार उक्त ब्रह्म सर्वान्तरात्मा कहा गया और आनन्द मय शब्द सर्वान्तरात्मा रूपमें कहा गया। तथा आनन्दमय शब्द ब्रह्म का वाचक है, अन्य का नहीं, यह सिद्ध हुआ। "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" यह लक्षण है। **"तस्माद्वा"** इत्यादि श्रुति मन्त्र में आनन्दमय ब्रह्म ही प्रतिबोधित है।

❀ नेतरोनुपपत्तेः १।१।१७ ❀

हरिभाष्यम्–इति अत्र अस्मिन्, सूत्रे कथ्यतेयदि आनन्दमयः इति शब्दं जीवात्मानं मन्येत् तर्हिका हानिः ? उत्तर रूपेण विज्ञाप्यते। आनन्दमयः परमात्मा एव नेतरः। कुतः। अनुपपत्तेः। अनुपत्तिः कथम् ? उच्यते। "सत्यं ज्ञान मनन्तं ब्रह्म" इति उक्तम्। मन्त्रेऽस्मिन् ज्ञान स्वरूपमित्यर्थः। न हि

जीवो ज्ञानस्वरूपः । अल्पज्ञत्वमेव हि जीवत्वम् । अल्पज्ञे जीवे आनन्दस्वरूपता नास्ति । अल्पता हि आनन्दस्य तिरोधायिका । ब्रह्मण आनन्दो न तिरोहिता भवति कदाचित् अपि । जीवे च नानन्दनित्यत्वम् ।

अत्रेवं तत्वम्–जन्माद्यस्य यतः (ब्र०सूत्र १।१।२) इत्यतः मान्त्रवर्णिकमेव च गीयते (ब्र० सूत्र १।१।१६) इत्यन्तैः सूत्रैः सूत्रकृतिभिः विनिश्चतम् तद्धि जगत्कारणं ब्रह्म इति वेदमन्त्रे द्विभुजवर्णनमायाति । ब्राह्मणोऽस्यमुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः । अनया श्रुत्यावगम्यते असौ विग्रहो ब्रह्मानन्दमयोऽस्ति 'अर्द्ध-मात्रात्मको रामो ब्रह्मानन्दैकविग्रहः (रा० ता०) प्राकृताकार-रहितत्वं निराकारत्वमिति तन्निर्वचनम् । तस्य जगत्कर्तुः–ब्रह्मणो ज्ञानशक्तिवलैश्वर्यतेजोवीर्यादयो बहवः सहजा दिव्या गुणाः सन्ति । सकारणं करणाधिपाधिपो न चास्य कश्चित् जनिता न चाधिपः (श्वे० ६।८) न तस्य कार्यं करणञ्च विद्यते न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते । परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानवलक्रिया च (श्वे० ६।८) इत्यादिभिः श्रुतिभिः अवगम्यते । अन्यत्रापि तथा च "अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथा रसं नित्यमगन्धवच्च यत्" (क० १।३।१५) इत्यादिश्रुतीनां 'सर्व-गंधः सर्वरसः" इत्यादिश्रुतिभिः सह एकवाक्यतया प्राकृत-हेयगन्धादिनिषेधकत्वमुत्पद्यते । अन्यच्च कर्त्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिमित्यादिवचनैः साकारजगत्कर्त्रन्तर्यामिब्रह्मदर्शनेन तत्साम्यप्राप्तिरुक्ता भवति तस्मात् सगुणनिर्गुणसाकार–

निराकारशब्दाभिहितनिरवधिकनिरतिशयज्ञानानन्दबलैश्वर्य गुणैकतानं दिव्यमंगलविग्रहं स्वप्रकाशचिज्ज्योतिस्वरूपं सर्व-वेदान्तप्रतिपाद्यं स्वचिन्तैकप्राप्यं यज्जगज्जन्महेतुभूतं ब्रह्म रामजिज्ञास्यं ज्ञेयं धेयं प्राप्यञ्चेति । (१।१।१७)

❀ नेतरोऽनुपपत्तेः १।१।१७ ❀

भक्तिभूषणभाष्य–'प्रश्न'–इस सूत्र में कह रहे हैं कि यदि 'आनन्दमय' यह शब्द जीवात्मापरक मान लिया जाय तो क्या हानि है।

उत्तर—आनन्दमय परमात्मा ही है, दूसरा नहीं। प्रश्न-कैसे ? अनुपपत्ति से। प्रश्न–अनुपपत्ति कैसे ? उत्तर–ब्रह्म को सत्य, ज्ञान और अनन्त कहा गया गया है। यहाँ ज्ञान का अर्थ ज्ञान का स्वरूप है। जीव ज्ञानस्वरूप नहीं हो सकता है। जीव की यही परिभाषा है—अल्पता ही जीवत्व है। अतः अल्पज्ञ जीव में आनन्दस्वरूपता नहीं है। अल्पज्ञता ही आनन्द को तिरोहित करती है-अर्थात् ढँक देती है। ब्रह्म का आनन्द कभी भी तिरोहित नहीं होता और जीव में नित्य आनन्द नहीं होता है।

यहाँ पर यह रहस्य है–**जन्माद्यस्य यतः (ब्रह्मसूत्र १।१।२)** यहाँ से **'मान्त्रवर्णिकमेव च गीयते** (ब्रह्मसूत्र १।१।१६) यहाँ तक सूत्रकार ने निश्चित किया, वह निश्चित ही जगत् का कारण ब्रह्म द्विभुज आदि विग्रहवान् है।

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः ।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ।। (पु०सूक्त ११)

इस श्रुति से विदित होता है कि वह विग्रह आनन्दमय है। **'अर्द्धमात्रात्मको रामः'** इत्यादि इस श्रुति से भी सिद्ध होता है। प्राकृत आकार से रहित निर्गुणत्व है, यह निर्वचन हुआ। उस जगत्कर्त्ता ब्रह्म के ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वर्य, तेज, वीर्य आदि बहुत सहज दिव्य गुण हैं। **स कारणम्** (श्वेत० ६।९), **न तस्य कार्यम्...स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च** (श्वेत० ६।८) **अशब्दमस्पर्शम्**०(कठ० १।३।१५) इत्यादि श्रुतियों का **सर्वगन्धः सर्वरसः** इत्यादि श्रुतियों के साथ एकवाक्यता होने से प्राकृत हेय गन्ध आदि निषेधकत्व उत्पन्न होता है। तथा **'कर्त्तारमीशम्'** इत्यादि वचन से साकार, जगत्कर्ता और अन्तर्यामी ब्रह्म के दर्शन से उसकी साम्यप्राप्ति कही गयी है।

अतः सगुण-निर्गुण, साकार-निराकार आदि शब्दों से कथित निरवधिक, निरतिशय, ज्ञान, आनन्द, बल, ऐश्वर्य, तेज, वीर्य आदि अनन्त गुणों से युक्त दिव्य मङ्गल विग्रह, स्वप्रकाश ज्योतिः स्वरूप सर्ववेदान्तों द्वारा प्रतिपाद्य,अपने अनन्य चिन्तकों द्वारा प्राप्य जो जगत् के जन्म आदि का कारणभूत ब्रह्म श्रीरामतत्त्व हैं, वही जिज्ञास्य, ध्येय, ज्ञेय और प्राप्य है और इस जीव से अन्य आनन्दमय है, अतः-

❀ भेदव्यपदेशाच्च १।१।१८ ❀

हरिभाष्यम्-

भेदस्य व्यपदेशो भेदव्यपदेशः। व्यपदेशो व्यवहारः। जीवानन्दमययोर्भेदोपि व्यपदिश्यते। तथाहि रसो वै सः। रस

ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति। (तै० २।७) अत्र सूत्रे रसरूपेण परमात्मानं प्रतिपाद्य तस्य प्राप्त्यैव जीवः आनन्दं प्राप्नोति। यदि जीवोप्यानन्दमयः स्यात् तदा ब्रह्म प्राप्यै तस्यानन्दित्वं नोद्घोषयेच्छ्रुतिः।

❀ भेदव्यपदेशाच्च १।१।१८ ❀

भक्ति भूषण भाष्य—जीव और आनन्दमय के भेद का भी व्यवहार होता है। क्योंकि **'रसो वै सः'** इत्यादि पूर्ण प्रमाण से इस सूत्र में रसरूप से परमात्मा को प्रतिपादित कर उसकी प्राप्ति से ही जीव आनन्द को प्राप्त होता है। यदि जीव भी आनन्दमय हो जाये तब ब्रह्म को प्राप्त कर ही जीव के आनन्दीत्व का उद्घोष श्रुति न करती।

और इस जीव से अन्य आनन्दमय है—

❀ कामाच्च नानुमानापेक्षा १।१।१९ ❀

हरिभाष्यम्—अस्मिन् सूत्रे अनुमानस्य प्राधान्यम्। तस्यापेक्षा ब्रह्मणो न विद्यते। कुतः ? कामात्। तद् यत् कामयते स्वयं सर्वं तत्क्षणमेवोत्पादयति। न तस्याचितोपेक्षा। तथा हि 'सोकामयत बहु स्यां प्रजायेयेति। अत्र अचित्संसर्गो नोपदिश्यते। निखिलकलाकलितस्य ब्रह्मणो नानुमानापेक्षा। निरपेक्षं हि ब्रह्म सकलामेव सृष्टिं काममात्रेण उत्पादयति। तर्हि अचितस्य किं प्रयोजनम् ? तत्प्रयोजनमस्त्येव। अचिद् ब्रह्मणो देहभूता। अचित् एव कामेन सर्वमुत्पादयति। तर्हि

कथं ब्रह्म निरपेक्षं इत्युच्यते । बाह्यवस्तुनानामनपेक्षत्वात् । एवं निरपेक्षं स्वेष्टं संपादयितुं सामर्थ्यवद् ब्रह्मैव, तस्यैव जिज्ञासा प्रथमसूत्रेण उदिता ।

❀ कामाच्च नानुमानापेक्षा १।१।१६ ❀

भक्तिभूषणभाष्य–इस सूत्र में अनुमान की प्रधानता है। ब्रह्म को प्रधान की अपेक्षा नहीं होती ।

प्रश्न–क्यों ? उत्तर–कामस्वरूप होने से । वह जो--जो इच्छा करता है,स्वयं सब कुछ उसी क्षण इच्छामात्र से निर्माण कर लेता है । क्योंकि '**सोऽकामयत**' इत्यादि श्रुति में अचित् का संसर्ग उपदिष्ट नहीं है ।

प्रश्न—निखिल कलाकलित ब्रह्म को अनुमान की अपेक्षा नहीं है । निरपेक्ष ब्रह्म सकल सृष्टि को ही इच्छा मात्र से उत्पन्न करता है तो अचित् का प्रयोजन क्या है ?

उत्तर—उसका प्रयोजन तो है ही । अचित् ब्रह्म के देह से जायमाना है । अचित् ही इच्छामात्र से सभी को उत्पन्न करती है ।

प्रश्न–तो कैसे ब्रह्म निरपेक्ष कहा जाता है ?

उत्तर–उसे बाह्य वस्तुकी अपेक्षा न होने से। इस प्रकार वह निरपेक्ष ब्रह्म ही अपने को जो इष्ट है, उसे सम्पादित करने में समर्थ है । 'अथातो ब्रह्म जिज्ञासा' इस प्रथम सूत्र में उसी की जिज्ञासा कही गयी है । इति १/१/१६

❀ अस्मिन्नस्य च तद्योगं शास्ति १।१।२० ❀

हरिभाष्यम्–अस्मिन् आनन्दमये ब्रह्मणि अस्य जीवस्य तद्योगमानन्दयोगं शास्ति भगवती उपनिषद् । तेन योगं तद्योगमिति । यदानन्दस्वरूपे ब्रह्मणि जीवः संस्थामधिगच्छति तदा तस्यानन्दस्य योगं सम्बन्धं च लभते इति भावः। एवं च यस्य योगेन यो यल्लभते स स एव भवति इति प्रतिपादनमापाततोपि न रमणीयम् । अतएव ब्रह्म निरवधिकानन्दम्। जीवः तत्सम्बन्धेनैवानन्दमनुभवति । अतः आनन्दमयः परमेश्वर एव न तु जीवः ।। इत्यानन्दमयाधिकरणम् ।।

❀ अस्मिन्नस्य च तद्योगं शास्ति १।१।२० ❀

भक्तिभूषणभाष्य–

उस समय आनन्दमय परमात्मा के साथ इस जीव को शास्त्रों में आनन्दमय कहा गया है; क्योंकि जिसके द्वारा जिस वस्तु की प्राप्ति होते देखा जाता है वह उसी रूप में अवस्थित हो जाता है । इस प्रकार का कथन कथमपि उचित एवं युक्त नहीं है । अतः ब्रह्म तो निरवधिक है और निरवधिक आनन्द है ही जो सदा ही उस ब्रह्म के सम्बन्ध से अथवा उपासना से आनन्द का अनुभव होता है । अतः यह पूर्ण निश्चित हो जाता है कि संसार में मात्र परमात्मा ही आनन्दमय हैं, जीव नही। जीव का साहचर्य परमात्मा से होने पर वह भी आनन्दमय कहा जाता है ।

"अस्मिन्नस्य च तद्योगं शास्ति" इस सूत्र का यही तात्पर्य है। इस प्रकार यह 'आनन्दमय अधिकरण प्रकरण' समाप्त होता है। इसके बाद अन्तरधिकरण प्रकरण का प्रारम्भ होगा। इति

(अथान्तरधिकरणम् ७)

❀ अन्तस्तद्धर्मोपदेशात् १।१।२१ ❀

हरिभाष्यम्—पूर्वाधिकरणे ब्रह्म आनन्दमयमिति समर्थितम्। साम्प्रतं तस्य आनन्दमयस्य ब्रह्मण उपासनादृष्ट्या स्थानं निर्देष्टुमाह—अन्तरिति । ब्रह्मण आनन्दमयत्वेन निर्देशात् प्रतीतिस्थानमुपासना स्थानं चान्तः । अन्तःकरणमित्यर्थः । मन इति भावः । कुत एतदवगम्यते? तद्धर्मोपदेशात् । तद्धर्मस्तस्य मनसो धर्मस्तद्धर्मः । तस्योपदेशात् । ब्रह्म अवगन्तुं मानस एव धर्मः । धर्मःशक्तिविशेषः । तथैवोपदेशः—'मनसैवेदमाप्तव्यम्' इति कठोपदेशः । ध्यानं ज्ञानं प्राप्तिश्च अत्रैकार्थ्यं भजते । 'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह' इति तैत्तिरीयवचनेन मनसाप्य प्राप्तव्य उक्ति विरुध्य इति वाच्यम् । गोस्वामितुलसीदासेनोक्तम्—

मन समेत जेहि जान न बानी ।
तरकि न सकहिं सकल अनुमानी ।। रा० मा० ।।

ज्ञानशक्तिनो मनसोऽपि ब्रह्म सूक्ष्मम् इत्येवात्र तद्वचनस्य तात्पर्यात् । अत एव 'मनो ब्रह्मेति व्यजानात्' इत्यत्र मनसो ब्रह्मोक्तिः संगच्छते । अस्मात् कारणात् 'स एषोन्तर्हृदयाकाशः तस्मिन्नयं पुरुषो मनोमयः 'सत्यात्मप्राणारामं मन आनन्दम् शान्तिसमृद्धममृतम्' 'कोयमात्मेति वयमुपास्महे कतरः स आत्मा येन वा पश्यति येन वा श्रृणोति यदेतत् हृदयं मनश्चैतत्' इत्यादीनां वचनानि अपि चारितार्थ्यानि । ननु अनेन श्रुति तु

'मन एव ब्रह्म इति विज्ञातं भवति। भवता तु ब्रह्मस्थानं मन इति निर्दिश्यते कथमत्र सामञ्जस्यमिति चेत्। तर्हि उच्यते। न हि तस्य ब्रह्मरूपत्वं न वा तस्य ब्रह्मस्थानता। ब्रह्मणो निराकारत्ववचनात्। निराकारः सशरीरश्वेति विरुद्धवचनम्।

उत्तर–'यत्तदद्रेश्यमग्राह्यमगोत्रमवर्णमचक्षुःश्रोत्रं तदपाणिपादं नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मं तदव्ययं यद् भूतयोनिम्' 'तदेतदिति मन्यन्ते निर्देश्यं परमं सुखम्' 'नान्तः प्रज्ञं न बहिः प्रज्ञं नोभयतः प्रज्ञं न प्रज्ञानघनं न प्रज्ञं नाप्रज्ञम्। इत्यादीनां उपनिषद्वचनान्यपि परब्रह्मणः परमात्मनः अवतार एव स्वीक्रियन्ते। किं यत् वेदेषु उपनिषत्सु अपि च अवतारस्वारस्यं रहस्यरूपेण विद्यते। परमेश्वरस्य रूपं सत्यसंकल्पत्वात् एव भवति। यथा संकल्पः शरीरसम्बन्धं साधयति, तेनैव प्रकारेण सम्बन्धं पुराणादयः साधयन्ति एव। यदि साकारो न भविष्यति तर्हि निराकारस्यापि स्थानं शून्यमेव भविष्यति। श्रीरामकृष्णादीनामवताराणां रहस्यं उपासना च पौराणिकी व्याख्या वतर्ते। अस्मात् नायमवसरोत्र एकैव पक्षविचाराय। यद्यस्मादुदेति तत्रैव तद्वर्धते। यदि साकारस्य बीजं मनसि वतर्ते तर्हि साकारत्वं उदेति। यदि निराकारत्वं भावबीजं वतर्ते तर्हि हृदि निराकारत्वमेव उदेति। जगदिदं साकारत्वं एव दृश्यते। संसारे एव भावो भावना उत्पादना क्रियाश्च दरीदृश्यन्ते। तथैव वेदानां तात्पर्यं पुराणे, इतिहासे, स्मृतौ च प्रस्फुटति। यदि वेदानां तात्पर्यं पुराणेतिहासश्च न प्रकटीक्रियेताम् तदा ब्रह्मणः तात्पर्यमेव विकासत्वेन न प्राप्नुयात्। अतो हेतोः श्रुति तात्पर्यं पुराणं

इतिहासं, स्मृत्यादीनि च सन्ति एव । ब्रह्मणः स्वरूपं राम-कृष्णाद्यवतारमेव साधयति इति 'अन्तस्तद्धर्मोपदेशात्' सूत्रेण निर्दिश्यते इति ।। १।१।२१ ।।

❀ अन्तस्तद्धर्मोपदेशात् १।१।२१ ❀

भक्तिभूषणभाष्य–ब्रह्म आनन्दमय है । आनन्द स्वरूप है, यह पूर्व अधिकरण में कहा गया । अब ब्रह्म की उपासना के स्थान का विचार किया जा रहा है । ब्रह्म आनन्द स्वरूप है । आनन्द की प्रतीति अन्तःकरण अर्थात् मन में होती है । अन्तः-करण ही अनुभूति का स्थान है ।

यहाँ जिज्ञासा होती है- यह कैसे कहा जा सकता है ? उत्तर है - **तद्धर्मोपदेशात्**–अर्थात् शक्ति विशेष का नाम ही धर्म है । ब्रह्म को जानने के लिए मन का ही निर्देश किया गया है । जानना किसी भी वस्तु का मात्र मन से ही सम्पादन हो सकता है । कठोपनिषद् में प्रतिपादन किया गया है कि मन से ही ब्रह्म का ज्ञान होता है ।

प्रश्न है; इस सूत्र में ध्यान का प्रसङ्ग है, तब ज्ञान का प्रसङ्ग कैसे उपस्थित होता है ?

उत्तर है कि ध्यान, ज्ञान, प्राप्ति ये सभी विषयों में समा-नार्थक ही कहे जाते हैं । ध्यान ही प्राप्ति है । यदि यह कहा जाय कि ध्यान प्राप्ति नहीं है क्योंकि ब्रह्म इतना निकट है कि ध्यान और प्राप्ति का भेद किया ही नहीं जा सकता । ध्यान

ही प्राप्ति का रूप धारण कर लेता है ऐसा कहा जा सकता है। वास्तव में ध्यान ही प्राप्ति के रूप में वर्णित किया गया है। यद्यपि तैत्तिरीय उपनिषद् में प्रतिपादन किया गया है कि मन से ब्रह्म की प्राप्ति नहीं होती; तब उसके विरुद्ध कैसे कहा जा सकता है ? उसका उत्तर यह है कि विरुद्ध कहना अनुचित है। मन ही ज्ञान शक्ति है जो सभी को ग्रहण करता है; और ब्रह्म इतना सूक्ष्म है कि मन की पहुँच वहाँ तक नहीं है। इस बात को इसलिए कहा गया है कि ब्रह्म की सूक्ष्मता सिद्ध हो सके। इस प्रकार की बहुत श्रुतियाँ प्राप्त हैं जहाँ मन को ही ब्रह्म के रूपमें प्रतिपादित किया गया है। अतः मन ही ब्रह्म के ध्यान का स्थान है। ब्रह्म मनोरूप नहीं है। मनका सूक्ष्म आकार तो है ही, ब्रह्म का कोई आकार है नहीं, यह एक पक्ष है। उसको निराकार-साकार भी कहा गया है। निराकार और साकार, अशरीर और सशरीर वर्णन प्राप्त होता है। ब्रह्म सत्यसंकल्प वाला है। उसी संकलपबलसे वह अपनेको साकार बना लेता है। कोई कहता है ऐसा नहीं है। विनाशी का नाम शरीर है। यदि उसका शरीर विनाशशील हो तो वह सत्यसंकल्प नहीं हो सकता। यदि यह विचार किया जाय कि मेरा शरीर विनाशी शरीर उत्पन्न हो तो यह उपर्युक्त कहा हुआ दोष उपस्थित नहीं होता। उत्तर-वह असत्य संकल्प करता ही नहीं। विना शरीर वाला विना हुए उसे लाभ नहीं है। परन्तु यहाँ विचार यह है कि जिस प्रकार वह ब्रह्म बहुभवन का संकल्प किया तो (एकोऽहं बहुस्याम) का संकल्प कैसे कर सकता है? उसी सशरीर

होने का भी संकल्प कर सकता है। यदि यह कहो कि उसे शरीर-धारी बनने से कोई लाभ नहीं है तो श्रीराम, श्रीकृष्ण आदि अवतारों की कथा पुराणों इतिहासों में क्यों वर्णन की गयी है? पुराणों, इतिहासोंके द्वारा ही वेदके रहस्यवचन उद्घाटित होते हैं। बीज के बिना कोई सिद्धि नहीं होती। जो यहां उत्पन्न होता है वही बढ़ता भी है। यदि साकार का बीज मन में है तो ब्रह्म साकार ही हैं और यदि निराकार का भाव बीज मनमें है तो ब्रह्म निराकार ही है। वह तो भावानुरूप ही सगुण और निर्गुण होताहै। उसी प्रकार ब्रह्म संसारमें अनुभव एवं नेत्रों का विषय भी बनता है। क्योंकि भाव भावना उत्पादना आदि क्रियायें संसार में ही सर्वत्र दिखाई पड़ती हैं। इतिहास, पुराण, स्मृतियों के द्वारा ही वेदों का तात्पर्य उद्घा-टित होता है ॥ इति ।१।१।२१॥

❀ भेदव्यपदेशाच्चान्यः १।१।२२ ❀

हरिभाष्यम्–अस्मिन् सूत्रेऽपि ब्रह्मणो जीवस्य च भेदो व्यपदिश्यते। तस्माद् अन्यदेव तद्ब्रह्म यस्मात्कस्मादपि जीवात्। क्वास्ति भेदव्यपदेशः? सर्वत्रैव वेदेषु। यथा 'तेजोसि तेजो मयि धेहि' य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते' 'अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्' 'सर्वतो नः शकुने भद्रमा वद् विश्वतो नः शकुने पुण्य मा वद' (ऋ० २।४३।२)

त्वमग्ने प्रथमः (ऋ० १।३१।१) 'देवो देवानामसि मित्रो अद्भुतो वसुर्वसूनामसि चारुरध्वरे' (१।९४।१३) इत्यादिषूपास्य-भूतात्परब्रह्मणः उपासकस्य जीवस्य पार्थक्येन ग्रहणम्।

अतः सर्वेषु अन्तर्निहितत्वात् ब्रह्मान्तरं कथ्यते तर्हि जीव-मेवान्तरं कथन्न ? कियत् सोऽपि अन्तर्निहितत्वादेव । उत्तर-अनेन सूत्रेण प्रतिपाद्यते यत् ब्रह्म सर्वान्तर्निहितो विद्यते । जीवान्तर्निहितत्वमपि च वर्तते । जीवः एकस्मिन्नेव शरीरे अन्तर्निहितः वतर्ते । अस्मात् असौ अन्तर्निहितः कथितुं न शक्यते । सर्वान्तर्निहितत्वम् एव वेदेषु अन्तरं कथ्यते । अन्य-धर्मेभ्योऽपि ब्रह्मजीवभेदमुपदिष्टम् ।

इत्यन्तरधिकरणम् ।।७।।

❀ भेदव्यपदेशाच्चान्यः १।१।२२ ❀

भक्तिभूषणभाष्य–इस सूत्र में भी जीव और ब्रह्म का कथन हुआ है । अतः जिस किसी भी जीव से ब्रह्म भिन्न ही है । **प्रश्न**–भेद से व्यवहार कहाँ है ? **उत्तर**–वेदोंमें सर्वत्र ही । यथा- **"तेजोऽसीत्यादि", "य आत्मदा०" अग्ने नय०"** । **"सर्वतो नः शकुने०" (ऋक् २।४३।२), 'त्वमग्ने प्रथमः' ऋक् १।३१।१) 'देवो देवानामसि०" (१।६४।१३)** इत्यादि मन्त्रोंमें उपास्यभूत परब्रह्म से उपासक जीव का पृथक् रूपसे ग्रहण है । अतः सभी के अन्तर्निहित होने से ब्रह्म अन्तर् कहा जाता है तो जीव को भी अन्तर् क्यों नहीं कहा जाता हैं ? क्योंकि वह भी अन्त-र्निहित ही है । इस सूत्रसे इसका उत्तर किया गया है कि ब्रह्म सभी के अन्तर् में निहित है और जीव के अन्तर् भी निहित ही है । जीव एक ही शरीरमें अन्तर्निहितहै । अतः वह (जीव) अन्तर्निहित नहीं कहा जा सकता है । सभी के अन्तर् में विद्य-

मान को ही वेदों में 'अन्तर्' यह कहा गया है। अन्य धर्म-वाक्यों से भी जीव–ब्रह्मभेद उपदिष्ट हुआ है।

'सर्वतो नः शकुने' कथनशक्ति से युक्त परमेश्वर ! नः–हम लोगों के लिये, सर्वतः–सभी ओर से, भद्रम् आ वद-कल्याण-कारी उपदेश करो ।

शकुने–सभी ओर से शक्तिमान् परमपुरुष ! नः-हम लोगों के लिये, विश्वतः–सभी ओर से, पुण्यम् आ वद--पुण्य का ही उपदेश करो ।

'त्वमग्ने' हे अग्ने--हे प्रकाश अथवा विज्ञानस्वरूप परमात्मन्, त्वम्-आप, प्रथमः-अनादितत्त्व अर्थात् अद्वितीय (हो)।

देवो देवानामसि मित्रोऽद्भुतो वसुर्वसूनामसि चारुरध्वरे ।

देवानाम् - दिव्यगुणविशिष्ट विद्वानों अथवा पदार्थों में, देवः– दिव्य शक्ति रूप, अद्भुतः–परम आश्चर्य रूप गुण, कर्म और स्वभाव से सम्पन्न,अध्वरे–उपासना रूप यज्ञ अथवा संग्राम में, चारुः–अत्यन्त श्रेष्ठ, वसूनाम्--बसने और बसाने वालों में, वसुः–बसने और बसाने वाले, असि-आप हो ।

श्रीरामचरितमानस में श्रीरामब्रह्म को अन्तः स्थित ईश्वर कहा गया है । यथा—

याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तःस्थमीश्वरम् ।

अर्थात् श्रद्धा और विश्वास के विना अन्तःकरण में स्थित विराजमान ईश्वर को सिद्धजन नहीं देख पाते हैं । यथा—

सबके उर अन्तर बसहु जानहु भाव कुभाव ॥

यह अन्तरधिकरण समाप्त हुआ ।

✡ अथ आकाशाधिकरण ✡

❀ आकाशस्तल्लिङ्गात् १।१।२३ ❀

हरिभाष्यम्–आकाशशब्देनाकाशार्थशब्दैश्चापि वेदेषु ब्रह्म उच्यते। यद्याकाशशब्दस्तदर्थको वा कश्चित् शब्दो दृश्येत तदर्थो ब्रह्म इत्येवावगन्तव्यम्। कुतः? तल्लिङ्गात्। तस्य ब्रह्मणो लिङ्गं तल्लिङ्गं तस्मात्। यदि ब्रह्मणो लिङ्गं तत्र प्रतीयेत अवश्यं तस्य ब्रह्माभिधानं स्यादित्यर्थः। अलिङ्गस्यापि ब्रह्मणः शाखारुन्धती न्यायेन यैर्यैर्लिङ्गैरवगतिः प्रतिबोधिता तानि लिङ्गानि तत्र तत्र पठितेषु आकाशार्थकेषु शब्देषु श्रूयेरंश्चेत्तेषामपि ब्रह्म-बोधकताववबोध्येतिभावः। यथा–'नभोसिप्रतक्वा' (शु०य० ५।३२) 'खं ब्रह्म'(शु०यजु० ४०।१७)ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्यस्मिन्देवा अधि विश्वे निषेदुः (ऋग्० १।१६४।३९) सहस्राक्षरा परमे व्योमन्' (ऋग् १।१४४।४१) एषु सर्वेषु वेदमन्त्रेषु नभः, खं, व्योम शब्दाः आकाशार्थकाः तत्र तत्र ब्रह्मैवावबोधयन्ति इति [१।१।२३]

❀ आकाशस्तल्लिङ्गात् १।१।२३ ❀

भक्तिभूषणभाष्य–वेदों में आकाश शब्द से और आकाश अर्थ वाले शब्दों से भी ब्रह्म कहा जाता है। यदि आकाश शब्द अथवा तदर्थक कोई शब्द दिखाई दे तो उसका अर्थ ब्रह्म यह जानना चाहिये। क्यों? उ०–उस ब्रह्म का चिह्न आकाश है, इस कारण से। यदि ब्रह्म का लिङ्ग वहाँ प्रतीत होता हो तो अवश्य ब्रह्म संज्ञा होनी चाहिये।

अलिङ्ग ब्रह्म का भी "शाखारुन्धती न्याय" से जिन-२ लिङ्गों द्वारा ज्ञान कहा गया है, वे लिङ्ग वहाँ-वहाँ पठित

आकाशार्थक शब्दों में यदि सुने जायें तो उन आकाशबोधक शब्दों की भी ब्रह्मबोधकता समझनी चाहिये, यह तात्पर्य है। यथा–'नभोऽसि प्रतक्वा०' [शु०य० ५।३२] अर्थात् तुम सर्व-भूतों में व्याप्त आकाश हो। 'खं ब्रह्म०' [शु०यजु० ४०।१७] अर्थात् ब्रह्म आकाश स्वरूप है। "ऋचोऽक्षरे परमेव्योमन्०" [ऋ० १।१६४।३९] अर्थात् जगत् के रक्षक, सर्वव्यापक, व्योम सदृश उस अविनाशी परमात्मा में ऋक् आदि वेद और प्रतीय-मान सभी पदार्थ स्थित हैं। "सहस्राक्षरा परमे व्योमन् (ऋ० १।१६४।४१) अर्थात् अनन्त हस्तपाद, नेत्र, श्रोत्र आदि से संयुक्त परमात्मा में परा, पश्यन्ती मध्यमा और वैखरी वाणी स्थित है। इन सभी वेद मन्त्रों में जहाँ-जहाँ नभ, खं व्योम आदि आकाशवाची शब्द हैं, वहाँ-२ ब्रह्म ही अवबोधित है।

❁ अत एव प्राणः ॥१।१।२४ ❁

हरिभाष्यम्–अत एव प्राणशब्देनापि वेदेषु ब्रह्मैवाव-बोध्यते। यथा हि–'साम प्राणं प्रपद्ये' (शु०यजु० ३६।१) प्रपदनं रक्षाग्रहणाय स्वाश्रयाभिमानापसार पुरस्सर स्वरक्षासमर्थ पराश्रयोपसरणम्। प्रपदनेन प्राप्तस्य रक्षणरूपलिङ्गदर्शनादत्र प्राण शब्दोऽपि ब्रह्मपरक एव। [स्वामि भगवदाचार्यः] इत्या-काश प्राणाधिकरणम् ॥८॥

अत एव प्राणः ॥१।१।२४

भक्तिभूषणभाष्य–इसीलिये वेदों में प्राण शब्द से ब्रह्म ही जाना जाता है। जैसे कि–**साम प्राणं प्रपद्ये** (शु०यजु० ३६।१)

अर्थात् प्राणस्वरूप सामवेद (ब्रह्मतत्त्व) को प्राप्त होता हूँ। प्रपदन का अर्थ है–जीव का स्वकीय अभिमान त्यागकर रक्षा हेतु सर्वसमर्थ और सर्वाश्रय के शरण में समर्पित होना। इस मन्त्र में जो प्रपत्ति कही गयी है, इससे शरणागत रक्षणरूप लिङ्ग के दर्शन से यहाँ प्राण शब्द भी ब्रह्मपरक ही है।

☆ इति आकाशप्राणाधिकरणम् ☆

(अथ ज्योतिरधिकरणम्)

❀ ज्योतिश्चरणाभिधानात् १।१।२५ ❀

हरिभाष्यम्–ज्योतिः इत्यपि ब्रह्म नामैव। कुतः ? चरणाभिधानात्। चरणशब्दस्यार्थः चलनम्। चल गतिसंचलनयोश्चर गतिभक्षणयोर्वाधातोः चरणशब्दस्य निष्पत्तिः भवति। ज्योतिः अर्थात् प्रकाशकः। प्रकाशकरूपश्रीरामो ब्रह्मरूपेण प्रतिपाद्यते। सर्वेषु अवतारेषु श्रीरामकृष्णौ चलनरूपक्रियाः संपादितवन्तौ। अत्राचलब्रह्मणश्चलनं प्रतीयते।

जगत प्रकाश्य प्रकाशक रामू [रा० मा०] एषु सर्वेषु अर्थेषु ज्योतिः शब्दस्य प्रवृत्तिः यजुर्वेदे दृश्यते। गतेरभिधानात् उपवर्णनात्। उपासनादि प्रकरणेषु समागतो ज्योतिः शब्दो ब्रह्मवाचक एव। तत्रैव गतिसम्भवात्। सूर्यादीनां ज्योतिः एवात्र न विवक्षिता। चरणाभिधानात्–लौकिकज्योतिषां ब्रह्मणश्चरणत्वेनाभिधानात्। तथाहि 'पादोऽस्य सर्वाभूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि' इति। 'तद्देवाज्योतिषां ज्योतिरायुर्होपासतेऽमृतम्" [बृहद्०उ० ४।४।१६] इत्यत्र उपदिश्यमानं ज्योतिषां ज्योतिः

रामः एव भवितुमर्हति न तु लौकिकं ज्योतिः। तमेव भान्तमनु-भाति सर्वम्' इत्यादि वचनाब्रह्मणो प्रकाशः सर्वप्रसिद्धः। "यदतः परो दिवो ज्योतिः" [छा० ३।६३।७] इत्यत्रापि परो ज्योतिरितिकथनात् सर्वश्रेष्ठस्य ज्योतिषो श्रीरामब्रह्माख्य-स्यैव ग्रहणमिति ॥१।१।२५॥

❀ ज्योतिश्चरणाभिधानात् १।१।२५ ❀

"ज्योति" यह शब्द भी ब्रह्म का ही नाम है। प्रश्न—क्यों ? उ०—चरण कहने के कारण। चरण शब्द का अर्थ है, चलनात्मक कर्म। चल धातु का अर्थ है--गति। चर धातु का अर्थ है-गति और भक्षण। इन दोनों धातुओं से चरण शब्द की निष्पत्ति होती है। ज्योति शब्द प्रकाश का पर्याय है।

प्रकाशक रूप श्रीराम ब्रह्मरूप से प्रतिपादित हैं। सभी अवतारों में श्रीराम और श्रीकृष्ण ने चलन रूप क्रिया सम्पादित की है। यहाँ अचल ब्रह्म का चलन प्रतीत हो रहा है। जगत प्रकास्य प्रकासक रामू। यह श्रीरामचरितमानस में भी कहा गया है। इन सभी अर्थों में **ज्योतिः** शब्द की प्रवृत्ति यजुर्वेद में दृश्य है, गति के उपवर्णन से। उपासना आदि प्रकरणों में समागत **ज्योतिः** शब्द ब्रह्मवाचक ही है। वहीं (ब्रह्म में ही) गति सम्भव होने से। सूर्य आदि की ज्योति यहाँ विवक्षित नहीं है। लौकिक ज्योतियों की ब्रह्म से गतिशीलता का कथन होने से ही यहाँ **चरणाभिधान** किया गया है। जैसे कि **'पादोऽस्य विश्वाभूतानि त्रिपादस्यामृतन्दिवि' "तद्देवा ज्योतिषां ज्योति"**

रित्यादि । यहाँ उपदिश्यमान ज्योतियों की ज्योति श्रीराम ही हो सकते हैं, अन्य लौकिक ज्योति नहीं । "तमेव०" इत्यादि श्रुतियों से ब्रह्म का प्रकाश ही सर्वप्रसिद्ध है । **यदतः परो दिवो ज्योतिः** (छा० ३।१३।७) यहाँ भी **परो ज्योतिः** इस कथन से सर्वश्रेष्ठ ज्योति श्रीराम ब्रह्म का ही ग्रहण है ।

यह सूत्र ब्रह्मगायत्री विद्या की स्मृति दिलाता है और वह मन्त्र परब्रह्म श्रीराम का वाचक है । 'अतः' यह पद परत्व का वाचक है । अतः उक्त छान्दोग्य श्रुति के समर्थन में अनेक श्रुतिप्रमाण उपस्थित होते हैं । पूर्व में कहे हुये एकपाद्विभूति और त्रिपाद्विभूति के तात्पर्य को कहते हैं । **'अतः परो दिवो ज्योतिर्दीप्यते'** इत्यादि वाक्य में उभयलोक का प्रकाशक वह परब्रह्म ही है । यजुर्वेदोक्त **'ज्योतिषां ज्योतिरेकस्तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु'** का यही रहस्य है कि जो अनेक ज्योतियों की एक ज्योति है, उसमें लगकर मेरा मन शिव संकल्पवान् हो । जो प्रकाशान्तर के बिना सदैव प्रकाशित है, वह मुख्य होने से एक वचन में प्रयुक्त है । गीता में भगवान् ने कहा है—

अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः ।
प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम् ॥

श्रीरामतापनीयोपनिषद् में कहा गया है कि 'सूर्यमण्डल के मध्य में विराजमान श्रीसीता से समन्वित श्रीरामचन्द्र को मैं प्रणाम करता हूं'—

सूर्यमण्डलमध्यस्थं रामं सीतासमन्वितम् ।
नमामि पुण्डरीकाक्षम् ... ... ॥

आस्तिक परम्परानुसार ब्रह्मगायत्री के जपकाल में मन्त्र के प्राप्य भगवान् श्रीराम का उक्त रूप से ध्यान प्रसिद्ध एवं समादृत है। वेद एवं व्याकरण के उद्भट विद्वान् श्रीपाणिनि पाण्डेयजी सन्ध्या के समय इस ध्यान का उपदेश प्रायः किया करते थे।

छन्दोभिधानान्नेति चेन्न तथा चेतोर्पणनिगमात् तथाहि दर्शनम् १।१।२६

हरिभाष्यम्–छान्दोग्ये श्रूयते–'गायत्री वा इदं सर्वं भूतं यदिदं किञ्च' (३।१२।१) अत्र गायत्री प्रशंसनमेव प्रकृतम्। 'पादोस्य सर्वा भूतानि' (३।१२।६) इत्यनेन तस्या एव सर्व-भूतानां पादत्वमभिहितम्। न ब्रह्मणः। इति चेन्न तथा। कुतः ? चेतोर्पणनिगमात्। तत्र चेतसोर्पणस्योपदेशात्। छन्दो द्वारीकृत्य ब्रह्मणि चित्तार्पणस्योपदेशात्तत्रेति भावः छन्दो द्वारा ब्रह्मोपासनम् अन्यत्रापि दृश्यते। इति ज्योतिरधिकरणम् ॥८॥

छन्दोभिधानान्नेति चेन्न तथा चेतोर्पणनिगमात् तथाहि दर्शनम् १।१।२६

भक्तिभूषणभाष्य–छान्दोग्य उपनिषद् में विचार किया गया है कि जो कुछ भी पंचभूतादि संसार में दृष्टिगत होते हैं सब

गायत्री ही है । परन्तु विचार करने पर स्पष्ट हो जाता है कि यह सब गायत्री की प्रकरणप्राप्त प्रशंसा मात्र है । ब्रह्म तो चारपाद है । त्रिपाद् तो अदृश्य है, उसका दर्शन भूतल में नहीं होता है, परन्तु एकपाद् कार्यावस्थापन्न है जिसका स्पर्श आदि भूतल में सदैव होता है और एकपाद् विभूति की उपासना भी लोक में की जाती है । इसी एकपाद् का स्वरूप सम्पूर्ण भूतों का पादत्वरूप में ग्रहण किया जाता है, ब्रह्म का नहीं । ऐसा नहीं है । कैसे ? (चेतोर्पणनिगमात्) वहाँ चित्त के अर्पण करने का वर्णन किया गया है, उसी का उपदेश है । अर्थात् छन्दों द्वारा ब्रह्ममें चित्त के अर्पण करनेका वहाँ उपदेश हुआ है। **तथाहि दर्शनम्** (३।२।३।१२) ऐतरेयारण्यक में छन्दों द्वारा ब्रह्मोपासना कही गयी है । दृशिर् प्रेक्षणे धातु से दर्शन शब्द की निष्पत्ति होती है । **दृश्यते अनेन इति दर्शनम्** जिसके द्वारा गहन विचार या दर्शन किया जाय वही उपासना नाम से अभिहित किया गया है । चित्त का अर्पण करना भी वही है ।

वेदों में इसका वर्णन किया गया है । इस प्रकार ज्योति अधिकरण समाप्त हुआ ।।९।।

(अथ भूतादिपादव्यदेशाधिकरणम् ।

❀ भूतादिपादव्यपदेशोपपत्तेश्चैवम् १।१।२७ ❀

हरिभाष्यम्–अस्य सूत्रस्य अयमाशयः । छान्दोग्ये भूतपृथिवीशरीरहृदयैश्चतुष्पदेति पादव्यपदेशः क्रियते । तस्य च ब्रह्मण्येवोपपत्तिः ब्रह्म परित्यज्य गायत्री छन्दसो भूतादि–

पादव्यपदेशो नोपद्यते । यत 'एतावानस्य महिमेति' निरूपणं ब्रह्मण्येव सम्बद्ध्यते । न गायत्री छन्दसि इति । यथा—'रूपं रूपं मघवा बोभवीति मायाः कृण्वानस्तन्वं परि स्वाम' (ऋ० ३।५३।८) सहस्रशीर्षेत्यादिनापि भगवतो विश्वरूपत्व-मेव न्यरूपि ।

❀ भूतादिपादव्यपदेशोपपत्तेश्चैवम् १।१।२७ ❀

भक्तिभूषणभाष्य—छान्दोग्यमें भूत, पृथिवी, शरीर, हृदय इन सभी को चतुष्पद मान कर पाद का व्यवहार किया गया है। वह व्यवहार ब्रह्म में ही संगत होता है, अन्यत्र गायत्री आदि छन्द में नहीं । परम पूजनीय इन्द्र (परमात्मा) अपनी मायामयी शक्तियों के द्वारा विविध प्रकार के शरीर धारण करके भक्त जैसी कामना करता है उसी रूप में परिणत हो जाता है । 'सहस्रशीर्षा' इत्यादि मन्त्रों द्वारा भी भगवान् के विश्वरूप का ही निरूपण किया गया है।। १।१।२७।।

अत्र विरोधमुद्भाव्यसमाधानं क्रियन्ते—

उपदेशभेदान्नेति चेन्नोभयस्मिन्नप्य-विरोधात् १।१।२८

हरिभाष्यम्—उपदेशस्य भेदः उपदेशभेदः' तस्मात् उपदेश भेदात् । उपदेशभेदो वर्तते तस्मान्न ज्योतिरादिशब्देन पर-मात्मनो ग्रहणम् । कीदृगुपदेशभेदः ? 'ईदृक्—इदं त एकं पर ऊँ त एकं तृतीयेन ज्योतिषा सं विशस्व । संवेशने तन्वश्चारुरेधि

प्रियो देवानां परमे जनित्रे ।' (ऋ० १०।५६।१) अहनुतो महोधरुणाय देवान्दिवीव ज्योतिः स्वमा मिमीयाः (ऋ०१०।५६।२) ज्योतिरसि विश्वरूपं विश्वेषां देवानां समित् ।' (शु०य०५।३५) सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत् । दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्ष-मथो स्वः ।' (ऋ० १०।१९०।३) इत्यादिषु मन्त्रेषु सूर्यचन्द्रादीनां जनकत्वमपि ब्रह्मणि प्रतिपादितम् । परन्तु यो यस्य जनकः स तद्रूपो भवितुं नार्हति । न हि देवदत्तजनको यज्ञदत्तो देवदत्त-रूपतां प्रतिपद्यते इति चेत् न । न चैतद् दोषः । कुतः ? उभय-स्मिन्नप्यविरोधात् । कार्यकारणभावयोरुभयोरप्यवस्थयोरव-स्थिते तस्मिन्नुभयोरेव धर्मयोः सम्भवादविरोधः । कार्यकारण-भावरूपयोरभेदावग्रहादिति । अथवा ब्रह्मणो जातमपि सर्वं ब्रह्मैव इति ।। १।१।२८ ।।

उपदेशभेदान्नेति चेन्नोभयस्मिन्नप्य-विरोधात् १।१।२८

भक्तिभूषणभाष्य—यहाँ विरोध को कहकर ब्रह्मपक्ष का समाधान किया जा रहा है—उपदेश के भेद होनेसे ज्योति आदि शब्द से परमात्मा का ग्रहण होता है । **प्रश्न**—कैसा उपदेशभेद है ? **उत्तर**—इस प्रकार--इदं त एकमित्यादि । (ऋ०१०।५६।१) अहनुतो महोधरुणाय इत्यादि (ऋ० १०।५६।२), ज्योतिरसि विश्वरूपम् इत्यादि (शु० य० ५।३५), सूर्याचन्द्रमसौ धाता० (ऋ० १०।१९०।३) इत्यादि मन्त्रों में सूर्य, चन्द्र आदि का

जनक भी ब्रह्म में प्रतिपादित है। परन्तु जो जिसका जनक होता है, वह उसका तद्रूप नहीं हो सकता है। देवदत्त का जनक यज्ञदत्त देवदत्त की रूपता को नहीं प्राप्त होता है, यह नहीं कहना चाहिये। इसमें कोई दोष नहीं है। प्रश्न–क्यों ? उत्तर–दोनों में भी विरोध होने से। कार्यकारण इन दोनों की अवस्था के स्थित रहने पर ब्रह्म में दोनों ही धर्मों के सम्भव होने से विरोध नहीं है, इन कार्यकारण दोनों के अभेद होने से। अथवा ब्रह्म से उत्पन्न सब कुछ ब्रह्म है।

यहाँ कार्य और कारण अर्थात् जन्य और जनक का प्रसंग कहा जा रहा है। विचारणीय यह है कि जन्य–जनक में भेद सम्बन्ध है कि अभेद सम्बन्ध ? यदि अभेद सम्बन्ध है तो कार्य-कारण की एकता भी हो सकती है अथवा यदि भेद सम्बन्ध है तो कार्य और कारण की भिन्नता होनी चाहिये। किन्तु आज तक कार्य और कारण अथवा जन्य–जनक में अभेद सम्बन्ध न सुना जाता है, न देखा ही जाता है। क्योंकि सम्बन्ध भेद में ही होता है, अभेद में नहीं। जनक कारण होता है और जन्य कार्य। अतः कार्यकारण और जन्य-जनक सम्बन्ध कहा जाता है। सम्बन्ध लक्षण—**द्विष्ठः सम्बन्धः**। २ में स्थित वस्तु अथवा व्यक्ति का सम्बन्ध होता है। जैसे, गुरु–शिष्य, पति-पत्नी, पिता-पुत्र आदि। दर्शन पक्ष में–कार्यब्रह्म और कारणब्रह्म की स्थिति होती है। प्रकृति--प्रत्ययभेद, लौकिक–अलौकिक विग्रह भेद, साधु—असाधुशब्दभेद। नित्य—अनित्यआदि अनेक भेद देखे जा सकते हैं।

वेदों में द्वैत और अद्वैत दोनों श्रुतियाँ प्राप्त होती हैं। यथा-**अभेदपक्ष—एकमेवाद्वितीयम्, आत्मैवेदं सर्वम्, ऐतदात्म्यमिदं सर्वम् नेह नानास्ति किञ्चन, वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्, तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः** इत्यादि श्रुतियों में ब्रह्मातिरिक्त जगत् का अभाव कहा गया है।

भेदपक्ष—द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया, य आत्मनि तिष्ठन्, अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः, भोक्ता भोग्यं प्रेरितारं च मत्वा, अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानाः सरूपा इत्यादि श्रुतियों में ब्रह्म, जीव और माया इन तीनों की नित्यता कही गयी है।

चार्वाक् के मत से भी—अहं गौरः, अहं स्थूलः इस प्रत्यक्ष प्रमाण को आश्रय मानकर श्रुतिवाक्य स्थापित करते हैं। यथा—**स वा एष पुरुषोऽन्नरसमयः** तथा '**आत्मैव देहमयः**' इस वैरोचनपद्धति को अपने नास्तिकमत में स्थान देकर उसे वैदिक बनाने का प्रयास किये हैं।

इन विविध पक्षों की समीक्षा करते हुए यही कहना समीचीन होगा कि वेदमन्त्रों की खींचातानी व्याख्या के भ्रम में नहीं पड़ना चाहिए। सर्वोपरिप्रमाण वेद भगवान् हैं, अतः उन मूल सैद्धान्तिक प्रमाणों के अतिरिक्त अनेक मतमतान्तरवादी ग्रन्थों के चक्कर में आ जाने से बुद्धिभ्रम होने की आशंका है। एक दर्शन दूसरे दर्शन से मेल नहीं खाते, यह मात्र बौद्धिक व्यायाम है।

सीधी बात यही है कि कारण एक होता है और उसके कार्य अनेक होते हैं यह हुआ कार्य-कारण भेद। अब उसमें स्पष्ट है कि कारण के गुण, कर्म, स्वभाव कार्य में अवश्य आते हैं। कारण कि भौतिक कार्य भी नित्य और अनित्य होता है। उसका स्थूलरूप अनित्य और सूक्ष्मरूप नित्य माना गया है। जैसे कोई यह नहीं कह सकता कि बीज नित्य है कि वृक्ष; उसी प्रकार ब्रह्म, जीव, (जगत्) माया के सम्बन्ध में तर्क के अतिरिक्त निश्चितमत कोई कह नहीं सकता है। इसीलिए ब्रह्म तत्त्व की एकत्वविशिष्टता की सिद्धि हेतु उक्त सूत्र की आवश्यकता हुई है। ब्रह्म की एकता को सभी दर्शन स्वीकार करते हैं, केवल जीव और माया के पक्ष में दर्शनभेद है। १ संख्या मुख्य है, उसके बाद अनेक हो जाना स्वाभाविक है। जहाँ एक है, वहीं अनेक समवाय सम्बन्ध से सूत्ररूप में विद्यमान रहता है, अतः कहा गया—**'इदं त एकम्०'** अर्थात् यह जगत् तुम्हारे (ब्रह्म के) एक प्रकाश से दिन में प्रकाशित होता है। दूसरा जगत् दूसरे चन्द्ररूप प्रकाश से रात्रि में प्रकाशित होता है। तृतीय अलौकिक ज्योति से सम्पूर्ण जगत् में आप व्याप्त होते हैं। विद्वानों के हृदय में स्थित ज्ञान के आप जनक हो, अतः आप परमात्मा में उनकी प्रीति हो।

अह्नुतो महोधरुणाय—हे परमात्मन्! आप स्वयं अचल हो, अतः द्युलोक में देवों को स्थिर करने हेतु अपनी ज्योति में प्रवेश करें, इत्यादि १।१।२८

☆ अथ प्राणाधिकरणम् ☆

❁ प्राणस्तथानुगमात् १।१।२६ ❁

हरिभाष्यम्–वेदेषु उपनिषत्षु च प्राणशब्देन ब्रह्मैवाभिधीयते, इत्याह–प्राण इति । प्राणोपि प्राणशब्दोपि ब्रह्मवाचक एव । कुतः ? तथानुगमनात् । अनुगमोऽनुभवः । तथैवानुभवो भवतीति सूत्रार्थः । "प्राणा वै मारुताः" (शतपथ० ९।३।१७) अथर्ववेदे आयाति "प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं वशे । यो भूतः सर्वस्येश्वरो यस्मिन् सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥" (अथर्व० ११।३।१) "प्राणः प्रजा अनुवस्ते पिता पुत्रमिव प्रियम् । प्राणो ह सर्वस्येवरो यच्च न ॥" (अथर्व० १३।३।१०) "प्राणो मृत्युः प्राणस्तक्मा प्राणं देवा उपासते । प्राणो ह सत्यवादिनमुत्तमे लोक आ दधत् ॥" (अथर्व० ११।३।११) "प्राणमाहुर्मातरिश्वानं वातो ह प्राण उच्यते । प्राणो ह भूतं भव्यं च प्राणे सर्वं प्रतिष्ठितम् ।" (अथर्व० ११।४।१५) प्राण बध्नामि त्वा मयि ।" [अथर्व० ११।३।२६] "प्राणाय स्वाहा" [यजु० १३।१८] इत्यादिषु श्रुतिषु प्राणमारुतवातादिशब्दा ब्रह्मण एव बोधकाः प्राणपदेन सर्वत्र ब्रह्मणो गृह्यते, न लौकिकाः प्राणाः। लौकिकप्राणेषु सर्वस्य चराचरस्य प्रतिष्ठा न सम्भवति । सम्भवति च ब्रह्मणि सा सुतराम् । सामर्थ्यात् ब्रह्मण एव तत्रानुगमो भवति न तु लौकिक प्राणानाम् । अतः प्राणस्तदर्थका अन्ये वा शब्दाः तत्तत्स्थलेषु ब्रह्मवाचका एवेति ।

❁ प्राणस्तथानुगमात् १।१।२६ ❁

भक्तिभूषणभाष्य–वेदों और उपनिषदों में प्राण शब्द के कथन से ब्रह्म का ही बोध होता है, अतः उक्त सूत्र में प्राणशब्द का उच्चारण किया गया है। प्राणतत्त्व भी और प्राणशब्द भी ब्रह्म का ही वाचक है। प्रश्न--क्यों ? उत्तर–उसी प्रकार का अनुगम (अनुभव) होने से, यह सूत्र का अर्थ है। अनुगमात्-अर्थात् वेदों में इसका प्रयोग दिखाई पड़ता है। प्राण शब्द से अपान, व्यान, उदान, समान का भी प्रयोग सूत्र रूप दिखाया गया है। अतः सर्वभूतों से सुशोभित होने वाला प्राण भी ब्रह्म कहा गया है। जो सभी को प्राणनशक्ति प्रदान करता है, वही तो प्राण है। परमात्मा ही सभी को प्राणन शक्ति प्रदान करता है अतः उसी को प्राणनशक्ति के रूप में कहा गया है। यथा–**प्राण प्राण के जीव के जिव सुख के सुख राम**। (श्रीमानस) उक्त वेदमन्त्रों में यह भी दर्शाया गया है कि जो प्राण को जान लेता है, उसे संसार में कुछ जानना अवशिष्ट नहीं रह जाता है। प्राण मारुत, वात आदि शब्द ब्रह्म के ही बोधक हैं।

प्राण ही भूत और भविष्यत् है। उसी में सब कुछ प्रतिष्ठित है। प्राण शब्द से सर्वत्र ब्रह्म का ही ग्रहण होता है, लौकिक प्राण का नहीं। उपर्युक्त वेद मन्त्रों के आधार से लौकिक प्राणों में सभी चराचर की प्रतिष्ठा सम्भव नहीं है। और ब्रह्म में भली भाँति यह सम्भव है। ब्रह्म में प्राणत्व का सामर्थ्य है, अतः उसी प्रकार उसका अनुभव किया जाता है, न कि लौकिक प्राणों का। अतः प्राणपद तदर्थक (ब्रह्मार्थक) ही यहाँ पर है, अन्य शब्द भी उन-उन स्थलों में ब्रह्मवाचक ही हैं ॥१।१।२६॥

अत्रोत्थितामुपस्थापितां वा शङ्कां समादधान आह—

न वक्तुरात्मोपदेशादिति चेदध्यात्मसम्बन्धभूमा ह्यस्मिन् ॥१।१।३०

हरिभाष्यम्—न प्रागुक्तं, तन्न। कुतः ? वक्तुरात्मोपदेशात् वक्तुरुपदेष्टुर्ऋषेरात्मोपदेशात् ।

अयमाशयः, वेदेषु प्रायेण सर्व एव मन्त्रा उपदेश्योपदेष्टारौ प्रकल्प्य दृष्ट्वा च प्रवर्तिताः । कश्चिच्छ्रोता कश्चिच्च वक्ता । कश्चित् उपदेश्यः कश्चिच्चोपदेष्टा । "तेजोसि तेजो मयि धेहि" इति यथा । अत्राचार्यः शिष्यान् शिक्षयति । 'तेजोसि' इति रीत्या युष्माभिः प्राथ्यं परंब्रह्म इति । "विद्मे प्रियस्य मारुतस्य धाम्न" इत्यादौ वक्ता वेदर्षिः । स्वयमेव स्तौति—"त्वं अहं मारुत धाम ज्ञान वा इति । एवं चात्मन एवोपदेशः प्रख्यापनमिति यावत् प्राणशब्देन प्रावोचि । न ब्रह्मण इति चेदुच्यते । तर्ही-दमुत्तरम्—अध्यात्म—सम्बन्धभूमा ह्ययं मन्त्रः । अस्मिन् मन्त्रे अस्मिन् प्रकरणे चाध्यात्मसम्बन्धस्यैव भूमाबाहुल्यं विद्यते । नोपदेष्टुः कस्याप्यृषेरन्यस्य वा कस्यचिदिति ॥१।१।३०॥

न वक्तुरात्मोपदेशादिति चेदध्यात्मसम्बन्धभूमा ह्यस्मिन् ॥१।१।३०

भक्तिभूषणभाष्य—प्रतर्दन प्रकरण को लेकर कौषीतकी में प्राण शब्द जो ब्रह्मपरक कहा गया है, वह उचित नहीं है। क्योंकि उसके वक्ता इन्द्र हैं। और वह इन्द्र ही अपनी उपासना

करने को कहते हैं। किन्तु वैदिक ऋषियों ने परमात्मरूप का उपदेश किया है।

आशय यह है कि प्रायः वेदों में सभी मन्त्रों का उपदेश गुरु-शिष्य के सम्बन्ध से प्रवृत्त हुआ है। कोई श्रोता है तो कोई वक्ता। कोई उपदेशक है और कोई उपदेश्य ; 'जैसे कि **'तेजोसि तेजो मयि धेहि'** यहाँ आचार्य शिष्य को शिक्षा देता है—हे परमात्मन् आप तेजोरूप हो, इस रीति से हम लोगों द्वारा आप परब्रह्म प्रार्थ्य हैं। ऋग्वेद के 'प्राण प्रकरण' में कहा गया है 'विद्रे प्रियस्य०' अर्थात् मैं मारुत के [प्राणके] आपके धाम को जानता हूँ। [ऋ० १।८७।६] इत्यादि मन्त्रों में वक्ता वेदर्षि स्वयमेव आत्मा की स्तुति कर रहा है। इसमें ब्रह्म के प्राणरूप की चर्चा नहीं है।

इस आशंका का समाधान यह है कि इस मन्त्र और प्राण प्रकरण में अध्यात्म सम्बन्ध भूमा (परमपुरुष) का ही बाहुल्य है, किसी अन्य उपदेष्टा ऋषि का निर्देश नहीं ॥१।१।३०॥

अन्यत्रापि अस्य विषयस्य समाधानं रचयति—

शास्त्रदृष्ट्या तूपदेशो वामदेववत् १।१।३१

हरिभाष्यम्—शास्त्रस्य दृष्टिः शास्त्रदृष्टिस्तया। शास्त्रदृष्टिर्नामोपदेश्योपदेष्टृ भविकल्पनम्। वेदान् विहाय अन्येषु शास्त्रेषु उपदेश्यभावः उपदेष्टृभावश्च दृष्टौ भवतः। एवं वेदेषु अपि क्वचित् कल्पनोभयोरुपदेश्योपदेष्टृत्वयोरवगन्तव्या। तस्मिन् विषये दृष्टान्तमाह वामदेववत्। यथा भक्तेषु प्रह्लादो ध्रुवश्च सर्वत्र

एव उपतिष्ठाते, एवं वेदान्ते प्रायेण सर्वत्र वामदेव उपतिष्ठते। वामदेवोपदेशस्तु वेदे दृश्यते । तथा हि—

"त्रिरस्य ता परमा सन्ति सत्या स्पार्हा देवस्य जनिमान्यग्नेः। अनन्ते अन्तः परिवीत आगाच्छुचिः शुक्रो अर्यो रोरुचानः ॥" (ऋग् ४।१।७) इत्यत्र यथा वामदेवः किञ्चिच्छिष्यं प्रकल्प्याग्नि स्तौति तथैव तत्र तत्रर्षिरुपदर्शनात् प्रकल्पिताञ्शिष्यानिति।१।१।३१

शास्त्रदृष्ट्या तूपदेशो वामदेववत् १।१।३१

भक्तिभूषणभाष्य—अन्यत्र भी इस प्राण विषय के समाधान की रचना करते हैं—

अनुशासन अर्थ में शास्त्र शब्द सिद्ध होता है । शास्त्र सबका अनुशासन करता है । शास्त्रों में जहाँ जहाँ विचार प्राप्त होता है, वहाँ-२ गुरु-शिष्य [श्रोता-वक्ता] की कल्पना की गयी है । वेद तो नैसर्गिक [अपौरुषेय] हैं, अतः उनके अतिरिक्त ऋषिप्रणीत शास्त्रों में उपदेश्य, उपदेशक की कल्पना की गयी है । इस रीति के उपदेश स्वाभाविक प्रभावशाली होते हैं ।

इस प्रकार वेदों में भी कहीं—कहीं उपदेश्य और उपदेष्टा की कल्पना समझनी चाहिये । इस विषय में बामदेव की भाँति दृष्टान्त कहा है । जैसे भक्तों में प्रहलाद और ध्रुव मुख्य होने से सर्वत्र उपस्थित होते हैं, उसी प्रकार वेदान्तों में प्रायः सर्वत्र वामदेव ऋषि उपस्थित होते हैं । वामदेव का उपदेश तो वेद है ही । जैसे कि—'त्रिरस्य ता परमा सन्ति०' (ऋ० ४।१।७) इस मन्त्र में वामदेव ऋषि का उपदेश है। यहाँ जैसे कुछ शिष्य

की प्रकल्पना करके अग्नि की स्तुति कर रहे हैं, उसी प्रकार उन-२ शास्त्रों के ऋषि भी प्रकल्पित शिष्यों को उपदेश देते हैं।

अस्मिन् सूत्रे अपरां शङ्कामुन्मूलयति—

जीवमुख्यप्राणलिङ्गान्नेति चेन्नोपासात्रैविध्या-दाश्रितत्वादिह तद्योगात् १।१।३२

इति श्रीराममन्त्राचार्यैर्महर्षिव्यासप्रणीते वेदान्तदर्शने प्रथमाध्याय प्रथमःपादः ।

हरिभाष्यम्—उपरि प्रतिपादनेषु सर्वासु श्रुतिषु जीवलिङ्गं मुख्यप्राणलिङ्गं च दृश्यते । येन लिङ्गेन चिह्नेनोपवर्णनेन निर्विघ्नं जीवग्रहणं भवति तज्जीवलिङ्गमित्युच्यते । येन च लिङ्गेन मुख्यप्राणस्य लोकप्रसिद्धिमुपगतस्य निरुपद्रवं ग्रहणं भवति तन्मुख्यप्राणलिङ्गमित्युच्यते । तथा च जीवस्यैव मुख्य-प्राणस्यैव वा ग्रहणमस्तु मास्तु च परस्य ब्रह्मणोऽथवा त्रयाणाम-प्यस्तु ग्रहणमिति चेन्न । कुतः ? उपासात्रैविध्यात् । उपासो-पासना । तस्यास्त्रैविध्यमुपासा त्रैविध्यं तस्मात् । यदि जीव-स्यैव ग्रहणं स्यात् केवलस्य तर्हि प्राणस्य कथन्न ? तस्यापि-लिङ्गप्रतीते । यद्युभयोरेवागत्या ग्रहणं तर्हि परब्रह्मणेऽपि कथन्न ? तस्यापि लिङ्गप्रतीते । यदि त्रयाणामेव ग्रहणमिति पक्षः कुक्षौ क्रियते तर्हि उपासा त्रैविध्यरूपो दोषः प्रसज्यते । जीवस्य अपि उपासन प्राणस्यापि लौकिकस्य ब्रह्मणश्चापि परस्य । न हि वेदेषु जीवोपासनया प्राणाद्यचिदुपासनया वा श्रेयस्समधिगतिः प्रतिपादिता । अवशिष्टं तु सूत्रं व्याख्येयम् । आश्रितत्वादिति । अन्यासु च श्रुतिषु प्राणशब्देन ब्रह्मण

आश्रयणात् । कास्ताः श्रुतयः ? श्रूयन्ताम् ! 'यो अस्य विश्व-जन्मन ईशे विश्वस्य चेष्टतः । अन्येषु क्षिप्रधन्वने तस्मै प्राण नमोऽस्तु ते ।' (अथर्व० ११।४।२३) 'यथा प्राण बलिहृतस्तुभ्यं सर्वाः प्रजा इमाः । एवा तस्मै बलिं हरान् यस्त्वाधृणवत्सुश्रवः । (अथर्व० ११।४।१९) 'प्राणाय स्वाहा' (शु० य० २३।१८) 'प्राणो वा अमृतम्' (शत.) इत्यादयः । तद्योगादिति । तेन योगस्तत-द्योगस्तस्मात् तद्योगात्, योगः सम्बन्धः । ब्रह्मणा सदैव सम्बन्ध-स्तत्तच्छ्रुतिषु दृश्यते । तस्मात् ब्रह्मरूपेण श्रीराम एव प्रति-पाद्यते । लौकिकप्राणशब्देनापि सह रामः एव । मानसेऽपि-प्राण प्राण के जीवन जीके । स्वारथ रहित सखा सबही के ।।

प्राण प्राण के जीव के जिव सुख के सुखराम ।

एवं सर्वत्र रामः एव प्रतिपाद्यते । इति प्राणाधिकरणम् ।

इति सर्वतन्त्रस्वतन्त्र–परमहंसपरिव्राजकाचार्य–जगद्गुरु रामानन्दाचार्य–स्वामिहर्याचार्यविरचिते श्रीहरिभाष्यभासिते श्रीमद्वेदव्यासकृतब्रह्मसूत्रस्य प्रमथाध्यायस्य प्रथमः पादः ।

श्रीमारुतीशपदभक्तिभरं प्रणम्यं,
तच्छ्रीमहान्तपदभाजमनन्तबोधम् ।
बाल्यान्ममात्र परिपालनदत्तचित्तं,
श्रीरामबालकमहं स्वगुरुं नमामि ।।१।।

श्रीब्रह्मसूत्रहरिभाष्यमिदं विधाय,
श्रीरामभक्तिफलभूतमदःचिराय ।

श्रीसद्गुरोः स्मृतिरियं हृदि सन्निधाय,
तस्मै समर्पयति सज्जनरञ्जनाय ।।२।।
श्रीपरमेश्वरदासस्य स्मृतिं नौमि मुदा चिरम्
यत्कृपाकणतःवासस्थैर्यंलाभोऽस्ति मे सदा ।।

समर्पयिता–

ज० गुरु रा० स्वामि हर्याचार्यः

जीवमुख्यप्राणलिङ्गान्नेति चेन्नोपासात्रैविध्या-दाश्रितत्वादिह तद्योगात् १।१।३२

इस सूत्र में दूसरी शंका का उन्मूलन कर रहे हैं—

भक्तिभूषणभाष्य–उपर्युक्त प्रतिपादन में सभी श्रुतियों में जीवलिङ्ग और प्राणलिङ्ग देखा जाता है । जिस लिङ्ग के वर्णन से जीव का ग्रहण होता है, वह जीवलिङ्ग कहा जाता है । जिस चिह्न से मुख्यप्राण के मुख्य वर्णन होते हैं, वह प्राणलिङ्ग कहा जाता है । नासिका से संचारित वायु को प्राणवायु कहते हैं । यही लोक प्रसिद्धि है, अतः वह मुख्यप्राण कहा गया है ।

अब यहाँ प्रश्न होता है कि 'उपासना प्रकरण' में भी जहाँ जीवलिङ्ग हो वहाँ जीव का और जहाँ प्राणलिङ्ग हो वहाँ मुख्यप्राण का ग्रहण क्यों नहीं हो ? क्यों ? उत्तर—उपासना तीन प्रकार की होती है । भगवान् के समीप प्राप्त होना उपासना है । प्रथम उपासना ब्रह्मपरक है, दूसरी प्राणोपासना और तीसरी जीवोपासना है । यदि जीवोपासना मान ली जाए तो प्राणोपासना भी मानी जायेगी और यदि दोनों को मान लिया जाये तो ब्रह्मोपासना क्यों नहीं मानी जायेगी ? इसका समा-धान यही है कि ऐसा करने से उपासात्रैविध्यदोष का प्रसंग

उपस्थित हो जायेगा। किन्तु ध्यातव्य यह है कि वेदों में जीवोपासना और प्राणोपासना से मोक्षगति प्रतिपादित नहीं है। केवल ब्रह्मोपासना से ही मोक्ष का विधान वेदों में निर्दिष्ट है।

आश्रितत्वादिह—अन्य अनेक श्रुतियों में प्राण शब्द से ब्रह्म का आश्रय ग्रहण होता है। **प्रश्न**—वे कौन श्रुतियाँ हैं? **उत्तर**—सुनिये।

यो अस्य विश्व जन्मन इत्यादि [अथर्व ११।४।२३], यथा प्राण बलिहृतस्तुभ्यम्० [अथर्व ११।४।१९], प्राणाय स्वाहा [शु० यजु० २३।१८], प्राणो वा अमृतम् [शतपथ] इत्यादि श्रुतियों में प्राण शब्द से ब्रह्म का ही ग्रहण है।

तद्योगादिति—योग—सम्बन्ध। अतः जहाँ-२ प्राण का उच्चारण है उन-२ श्रुतियों में ब्रह्म का ही ग्रहण होता है, लौकिकप्राण का सम्बन्ध उन श्रुतियों से नहीं है, मात्र ब्रह्म का ही है। ब्रह्मरूप में श्रीरामतत्त्व है, वही प्राण के प्राण और जीव के भी जीव हैं—**प्राण प्राण** के इत्यादि श्रीरामचरितमानस प्रमाण है।

इस प्रकार जगद्गुरुरामानन्दाचार्यचरणाश्रित पं० रामदेवदास 'श्रीवैष्णव' विरचित ब्रह्मसूत्रहरिभाष्यभाषानुवाद एवं श्रीभक्ति भूषणभाष्यमें प्रथमाध्याय का प्रथमपाद समाप्त हुआ

जगद्गुरोः स्वगुरोः प्रभोः हर्याचार्यपदस्य ।
सेवाभक्तिपरायणो बुधजनमोदमयस्य ॥ १ ॥
ब्रह्मसूत्रहरिभाष्यमिह यथाबुद्धिसन्धार्य ।
भक्तिभूषण भाषया भाष्यं कृतं विचार्य ॥ २ ॥
रामचन्द्रजनिरेष वै गङ्गापदमनुवर्त्य ।
रामदेव मुदितो हृदा श्रीरामाय समर्प्य ॥ ३ ॥ ❀

—रामदेवदास श्रीवैष्णवः

☆ परिशिष्ट ☆

पुरुषार्थ के स्वरूप (खाकी बापू)

कीतिमान भूमि पर दीप्तिमान राघव चरन,
प्रीतिमान सीतापद जोहत सदा आपू हैं ।
द्युति द्युति राघव, नीलमणि के आलोक आप,
भक्ति भरो भावना संसार को दापू हैं ॥
राम रस जीवन में, गाँधिसम सुवास दियो,
दया उपकार पद पद में साँपू हैं ।
सद्गुरु के आचरन, आभरनाचार्य जोवन के,
मूर्तिमान करुणा के स्वरूप खाकी बापू हैं ॥
[स्वामी हर्याचार्य]

श्रीरामोपासनापूर्वक वैराग्य होकर जिसको ज्ञान हुआ है उस कृतोपास्ति के जीवनमें ज्ञान होने पर भी माधुर्य बना रहता है। वैराग्य के विना ज्ञान होता नहीं, किन्तु जिसे धर्मानुष्ठान के द्वारा विना रामोपासना के ही वैराग्य होकर ज्ञान हुआ है उसमें प्रायः माधुर्य नहीं होता। स्वामी रामकुमारदासजी महाराज के जीवन में श्रीरामोपासनापूर्वक ज्ञान है। यह दर्शन उसकाल में मैंने किया, जब प्रयाग में आचार्य पद पर मेरा चयन हुआ। गंगा के पावन तट पर भद्र होकर गैरिक वस्त्र धारण किया और शून्य आकाश की ओर निहारता रह गया। अवध आया। स्मारक सदन में निवास कर रहा था, किंकर्तव्य शून्य क्या करूँ ? किससे मिलू ? ऐसे करालकाल में स्वामी ज्ञानदासजी

महाराज के पते पर स्वामी रामकुमार दास महाराज ने मेरा मंगल पूछा । महान्त श्रीज्ञानदासजी महाराज ने मुझे वह पत्र दिया, पढ़कर मैं निहाल हो गया । संप्रदाय में एक महापुरुष की सहानुभूति का पत्र मिला तो ! इसका उत्तर स्वामीजी को मैंने लिखा । यद्यपि स्वामीजी का दर्शन स्वामी श्रीभगवदाचार्य के काल में ही मैंने किया था, परन्तु इतनी आत्मीयता से जीवन के क्रम में आप आयेंगे, ऐसा कभी विचार भी नहीं किया था । वह आचार्य चयनकाल बड़ा भयावह, संशय और उपेक्षा से ग्रस्त था । एक पत्र भी सहानुभूति का संप्रदाय का कोई महापुरुष सन्त नहीं दिया । ऐसे काल में पत्राचार के द्वारा साहित्यिक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक, सामाजिक संवल देकर स्वामीजो ने मेरी मानसिकता में बहुत बड़ा योगदान किया जो मेरे स्मृति पटल पर आज भी अंकित है । नासिक के कुम्भ में मेरी ऐसी स्थिति नहीं थी कि मैं कुम्भ में पहुँच पाऊँ ? ऐक्सोडेन्ट से मेरा दाहिना हाथ (कचट से) पक गया था । मैं इस लायक नहीं था कि कुम्भ पर जा सकता ।

कितने लोगों ने कहा—स्वामी हर्याचार्य का हाथ अस्पताल में काट दिया गया । मैं अपने हाथ लँगोटी भी नहीं पहन सकता था, कुम्भ पर कैसे जाता । फिर रामदेवदास शास्त्री को भेजा कि छोटा ही सही, कैम्प लग जाय । भगवती गोदावरी का दर्शन तो हो ही जायगा । स्वामीजी को ज्ञात हुआ तो वे स्टेशन पर दो गाड़ी लेकर अपने शिष्यों सहित स्वामी गंगादासजी महाराज को लिए फूल माला और जय जयकार प्लेटफार्म पर गुंजायमान

कर रहे थे । हाथ से अपंग मैं सोच रहा था कि किस प्रकार पहुँचूंगा । ट्रेन से उतरते ही स्वामीजी ने नेत्रों में आँसू भरे जब मेरा वंदन किया तो मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि माता गोदावरी मेरी आँसू पोंछ रही हैं । मेरे कैम्प में लेकर आये । वहाँ मुझे पहुँचाकर तब अपने सेवक के यहाँ पधारे और प्रातः काल पुनः आये । अनेक पधरावनियाँ कराये । जाते समय अपने सेठ शिष्य को सौंप गये । उसी ने कुम्भ पर सेवा किया और अयोध्या के लिये गाड़ी में वही बैठाया । मैं अपंग था ऐसे काल में स्वामीजी की अविरल कृपा मेरे ऊपर रही है, यह सन्त सेवा सम्प्रदाय सेवा, समाज सेवा, मानवीय दया कृपा एवं उपकार को उजागर करती है । इसे लेखनी से नहीं प्रकट किया जा सकता है ।

अन्त में वह समय भी आया जब साहित्य सृजन में अनेक सन्तों, महान्तों की दृष्टि मेरी ओर उठी कि इस पद पर आकर मैंने क्या किया ? यह एक प्रश्न चिह्न था जिसमें सक्षम नहीं हो पा रहा था, उसका प्रबन्ध स्वामीजी ने उस प्रकार से किया जैसे कोई माता अपनी स्नेह पालिता पुत्री के लिए उपहार भेजती है वह समय मेरे लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है,जब **श्रीसंप्रदाय मंथन** ग्रंथ की रचना हुयी । उसके समस्त रेखा ब्लाक और चित्र, नामकरण, विषय का संयोजन, महापुरुषों का लेख आदि (मैं तो किसी का नाम तक नहीं जानता था) यह सब काम स्वामी रामकुमार दास कर्मवीर ने किया । बहु प्रतीक्षित पल भी आ गया जिसके लिए सहस्रों हृदय बेचैन थे । पूरे सन्त

समाज की नजरें स्थित थीं कि यह क्या करते है ? वह सुअवसर लाने वाले स्वामीजी ही थे । मंथन लेकर मैं अहमदाबाद गया । १२ बजे रात्रि में स्वामीजी भाव भरे हृदय से जाग रहे थे । पहुंचने में देरी हो गयी । सोच रहे थे जुलूस कैसे निकलेगा ? उस समारोह के हजारों लोग साक्षी हैं जो पूर्ण श्रद्धा और उमंग से भरकर लू भरी गर्मी में नरोड़ा रोड (सैजपुर बोधा के मार्ग) पर जुलूस में नाच रहे थे । वह भक्तिपूरित हृदय में तुमुल ध्वनि के बीच स्वामीजी के नेत्रों में आँसू थे । वह आचार्य, समारोह सफलता एवं भक्ति के आँसू थे । जो आज भी मैं भूल नहीं पाया । आज भी मेरे पत्र १५ दिन में स्वामीजी को यदि न मिलें तो आप अस्वस्थ हो जाते हैं चिन्तित हो जाते हैं इस मातृत्व का दर्शन स्वामीजी में मैं सर्वदा किया हूं । इसे मैं चुका नहीं पाऊँगा क्योंकि इसका सम्बन्ध हृदय से है ।

अहमदाबाद में श्रीसरयूतीर्थ प्रेमदरवाजा के श्रीमहान्त स्वामी शिवरामदासजी महाराज का भी मुझे उदारतापूर्ण अनुराग प्राप्त हुआ है । हमारे **आचार्य चयन** में खाकी बापू को सबल बनाने का श्रेय स्वामी शिवरामदासजी का रहा है । साथ ही ये सम्प्रदाय निष्ठा में स्वामी भगवदाचार्य के पूर्ण अनुयायी रहे हैं । प्रेम दरवाजा स्थान का वैभव, परम्परा संबर्धन, संप्रदाय निष्ठा, त्याग पूर्वक कार्य करने की क्षमता अदम्य उत्साह, युवान होते हुये वयस्क का आचरण, आप की विशेषता है । इति ❀

✫ श्रीमते रामानन्दाय नमः ✫

❁ उद्‌गार ❁

जगद्‌गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी हर्याचार्यजी महाराज का कृतित्व एवम् व्यक्तित्व

श्रीरामानन्द सम्प्रदाय के प्रवर्तक पूर्ण ब्रह्म परमातमा भगवान् श्रीराम जी हैं। इस सम्प्रदाय की आचार्य परम्परा अति पवित्र और आदि अनादि परम्परा है। श्रीरामानन्द सम्प्रदाय ने और इस सम्प्रदाय के महान आचार्यो तथा विरक्त त्यागी, महात्यागी, सन्त, महान्त एवं विद्वानों ने भारतवर्ष की तथा सनातन धर्म की महती सेवा की है और आज भी कर रहे हैं। यह सम्प्रदाय राष्ट्रीय, सामाजिक एवं धार्मिक कार्यों में सर्वदा अग्रसर रहा है। इस सम्प्रदाय के आराध्य भगवान श्री सीताराम जी को तो पतित पावन सीताराम दीन हितकारी कहा ही जाता है। ऐसे परमपावन श्रीसम्प्रदाय के परमाचार्य भगवान श्रीरामानन्दाचार्यजी महाराज ने अति संकट काल में राष्ट्र एवं समाज की रक्षा की थी, और भगवद्‌भक्ति के दरवाजे मानव मात्र के लिए खोल दिये थे। आचार्यचरणों ने कहा था कि—

'सर्वे प्रपत्तेरधिकारिणः सदा शक्ता अशक्ता पदयोर्जगत्प्रभोः ।
(वैष्णवमताब्ज भास्कर)

इतनी बड़ी उदार मानवता अन्यत्र दुर्लभ है, इसी पावन सम्प्रदाय में श्रीस्वामी टीलाजी महाराज तथा परम सिद्ध स्वामी मंगलदासजी महाराज आदि अनेक महान सन्त भी हुये, जिन्होंने अनेक धर्मपीठों की स्थापना की है ।

ज० गु० रा० पण्डितराज स्वामी भगवदाचार्यजी महाराज—

इसी श्रीसम्प्रदाय की दिव्य शृंखला के एक आचार्य थे जगद्गुरु रामानन्दाचार्य श्रीस्वामी भगवदाचार्यजी महाराज । जिन्होंने इस सम्प्रदाय में महत्वपूर्ण क्रान्ति की और प्रस्थानत्रय पर वैदिकभाष्य लिखे जो अपने आपमें अद्वितीय हैं । श्रीरामानन्द दिग्विजय, भारत पारिजात आदि महाकाव्य प्रदान किये और श्रीरामानन्द सम्प्रदाय को अन्तरष्ट्रीय ख्याति प्रदान करके स्वतंत्र स्वरूप दिया, इस सत्य एवं तथ्य को इतिहास से कोई भी नहीं मिटा सकता है । पण्डितराज जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी भगवदाचार्यजी महाराज एवं पण्डित सम्राट् श्रीस्वामी वैष्णवा-चार्यजी महाराज ने श्रीरामानन्द सम्प्रदाय को विपुल साहित्य प्रदान किया है । श्रीस्वामी वैष्णवाचार्यजी तो श्रीमंगलदासजी महाराज के परिवार के उज्जवल रत्न थे । उन्होंने परिवार एवं सम्प्रदाय की जो सेवा की है, वह कभी भी भुलाई नहीं जा सकती है । पूज्यपाद श्रीस्वामी भगवदाचार्यजी महाराजके साकेत गमन के बाद श्रीरामानन्दाचार्य पद पर षड्दर्शनाचार्य स्वामी श्रीशिवरामाचार्यजी महाराज का अभिषेक मेरे पूज्य दादा जी

और उस समय के टीलाद्वाराचार्य मंगलपीठाधीश श्रीस्वामी रामनारायणाचार्यजी महाराज के करकमलों द्वारा समस्त गुजरात एवं भारत भर के धर्माचार्य सन्त, महान्त श्रीमहान्त, मण्डलेश्वर महामण्डलेश्वर, द्वाराचार्य, परिवाराचार्य एवं अनी अखाडे के श्रीमहान्त महानुभावों की उपस्थिति में हुआ था। आप २४ वें रामानन्दाचार्य के रूपमें श्रीसम्प्रदायाचार्य के पद पर अभिषिक्त किये गये। स्वामी शिवरामाचार्यजी महाराज ने समस्त भारत में भ्रमण करके अपनी ओजस्वी वाणी द्वारा श्रीरामभक्ति तथा हिन्दुत्वका प्रचार किया और श्रीरामजन्मभूमि न्यास की स्थापना करके महत्वपूर्ण कार्य किया।

जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी हर्याचार्य—

भूतपूर्व जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी शिवरामाचार्यजी के साकेतगमन के बाद उनके रिक्त स्थान पर तीर्थराज प्रयाग महाकुम्भ पर्व में श्री **चार सम्प्रदाय खालसा में, जो कुम्भ के अवसर पर भेष का सुप्रीम कोर्ट माना जाता है,** वहाँ वर्तमान श्रीमहान्त स्वामी विश्वम्भरदासजी महाराज की अध्यक्षता में हजारों सन्त महान्तों की उपस्थिति में विधि-विधान सहित **स्वामी हर्याचार्यजी महाराज** (व्याकरणाचार्य, वेदान्ताचार्य) अयोध्या निवासी का **२५ वें जगद्गुरु रामानन्दाचार्य पद पर अभिषेक मेरी उपस्थिति में मेरे ही हाथों से सम्पन्न हुआ था। श्रीटीलाद्वाराचार्य के पद से मैंने ही सर्वप्रथम उनका तिलक प्रचण्ड जयघोष के साथ किया।** इस अवसर पर परमाचार्य पूज्य स्वामी भगवदाचार्यजी महाराज द्वारा गठित आचार्य चयन

समिति के ५२ सदस्यों में से ४२ सदस्यों ने भी आपका तिलक किया और हजारों सन्तों ने तथा अनी अखाड़ों ने भी श्रीस्वामी हर्याचार्यजी महाराज का तिलक करके श्रीसम्प्रदाय के २५ वें जगद्गुरु पद पर अभिषिक्त किया था, यही सत्य है।

आचार्य श्री के कार्य–

वैदिक जगत् के लगभग सभी सम्प्रदायाचार्यों ने गीता, उपनिषद् एवं ब्रह्मसूत्र पर भाष्य किये हैं। पूज्यपाद श्रीस्वामी भगवदाचार्यजी महाराज ने तो वैदिक भाष्य सम्प्रदाय को प्रदान ही किये थे। उसी प्रकार उन्हीं की परम्परा के मान्य आचार्य ज०गु०रा० स्वामी हर्याचार्यजी महाराज ने भी गीताभक्ति दर्शन भाषा भाष्य तथा उपनिषद् का हरिभाष्य, ब्रह्मसूत्र पर हरिभाष्य वेदों में अवतार रहस्य, पंचमुखी हनुमत् कवच का भाषा भाष्य भूतपूर्व जगद्गुरु रामानन्दाचार्य श्रीस्वामी भगवदाचार्यजी महाराज रचित श्रीसम्प्रदाय समयः की हरितोषनी टीका तथा श्री सम्प्रदाय मंथन जैसे ग्रन्थ रत्न सम्प्रदाय को प्रदान करके आचार्य पद एवं श्रीसम्प्रदाय का गौरव बढ़ाया है। स्वामी हर्याचायजी महाराज ने जो 'श्रीसम्प्रदाय मंथन में अखाडे खालसों की तथा वेदों में रामानन्द सम्प्रदाय के तत्व आदि की चर्चा करते हुये उनकी महत्वपूर्ण व्याख्या की है वह आज तक कहीं भी अन्यत्र देखने में नहीं आया है। आप अनन्य श्रीरामनिष्ठ आचार्य हैं। जब वे गुजरात में सर्वप्रथम श्रीरामानन्द सम्प्रदाय के अनन्य सेवक लगभग ६० ग्रन्थों के लेखक वयोबृद्ध स्वामी रामकुमार दासजी खाकी बापू के यहाँ पधारे तब डाकोर में श्रीमंगलपीठ

तथा श्री ब्रह्मपीठ सहित लगभग सभी प्रसिद्ध धर्म स्थानों में उनकी पधरावनीयाँ हो चुकी हैं । उनके प्रवचनों में **श्रीरामपरत्व** भरा रहता है । वे सतत सारे देश में श्रीराम भक्ति के प्रचार प्रसार में संलग्न रहते हैं यह श्री सम्प्रदाय के लिये गौरव की बात है । पूज्यपाद आचार्य श्रीपरम सरल शान्त, दान्त तत्वदर्शी आचार्य हैं । आपमें श्री सम्प्रदाय के अनुरूप सभी गुण विद्यमान हैं, जो अन्यत्र दुर्लभ हैं । अहंकार तो आपसे कोसों दूर है तो भी श्री सम्प्रदाय के लिए गर्जना करने में आप सर्वदा अग्रसर हैं । आपके द्वारा प्रकाशित होने जा रहा ब्रह्मसूत्र का हिन्दी सहित हरिभाष्य श्रीरामानन्दीय जगत् एवम् वैदिक जगत का अद्वितीय भाष्य बने ऐसी मेरी भगवान् श्रीरामजी महाराज एवं श्रीहनुमान् जी से मंगल प्रार्थना है । इति शुभम् ।

ले०–श्री टीलाद्वाराचार्य मंगलपीठाधीश श्रीमहान्त माधवदास जी, डाकोर एवं बम्बई

सौराष्ट्र की भूमि में जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी हर्याचार्य जी महाराज का पदार्पण

श्री रामानन्द सम्प्रदायाचार्य गीता, उपनिषद् ब्रह्मसूत्र भाष्यकार विद्यावारिधि व्याख्यानमार्तण्ड जगद्गुरु, रामानन्दाचार्य स्वामी श्री हर्याचार्य जी महाराज सौराष्ट्र के परम श्री सम्प्रदायनिष्ठ श्रीवैष्णवरत्न महामण्डलेश्वर श्री महान्त लक्ष्मण दास जी के निमन्त्रण को स्वीकार कर सौराष्ट्र की पावन भूमि श्री पींगली नगर में पधारे ।

श्रीरामचरितमानस नवाह्न पारायण–

इस अवसर पर श्री महान्त जी ने श्री पींगली गांव के अपने श्रीराम मन्दिर में श्री रामायण पारायण ज्ञानयज्ञ का आयोजन अपने कृपापात्र शिष्य एवं देश विदेश में रामकथा का प्रचार प्रसार करने वाले महान्त श्रीरामदासजी महाराज को व्यास पद पर रखा था। जिसमें लगभग इक्यावन विद्वान पाठ में बैठे थे। महान्त श्री रामदास जी रामकथा के एक प्रसिद्ध वक्ता हैं।

शोभायात्रा–

दिनांक २३–३–६५ को आचार्यचरण गुजरात के लोक-सन्त श्री रामचरित के तात्विक विवेचक परोपकार भूषण सतत सेवा परायण श्री रामानन्द सम्प्रदाय के प्रसिद्ध सन्त श्री खाकी बापू के सहित पालीताणा श्री महान्त रामदास जी द्वारा संस्थापित श्री लक्ष्मणधाम में पधारे जहाँ आपका पूजन सन्त श्रीमहेशदास जी पुजारी जी ने किया और रात्रि विश्राम यहीं हुआ। २४--३--६५ को प्रातः ७ बजे आचार्य चरण स्वामी हर्याचार्य जी महाराज सदल बल पींगली गांव पधारे जहाँ श्री लक्ष्मणदासजी और श्रीमहन्तजी ने आपका पूजन किया। ठीक प्रातः १० बजे तक समस्त सौराष्ट्र के षट् दर्शन भेष के सन्त महान्त, श्री महान्तजन, तथा कर्णावती अहमदाबाद के गणमान्य सन्त महन्त श्री महन्त, मण्डलेश्वर, महामण्डलेश्वर महानुभाव पधारे। उसी समय सुसज्जित एक भव्य रथ में आचार्य चरणों को विराजमान किया गया तथा अन्य महापुरुष अन्य रथों में

विराजमान हुये और विशाल शोभायात्रा अपार जनसमूह की उपस्थिति में बाजे गाजे भजन मंडली एवं सन्तों के साथ लगभग डेढ़ किलोमीटर दूर से निकली। सन्त श्रीकमलेश दासजी ने जगद्‌गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी हर्याचार्य जी की जयघोष से समस्त जनसमूह को विभोर बना दिया। शोभायात्रा ठीक ११.३० बजे रामकथा के विशाल सभा मण्डप में पहुंची। सभाखण्ड जनसमूह से खचाखच भरा था। सर्वप्रथम श्रीमहान्त लक्ष्मण दासजी तथा उनके कृपापात्र शिष्य महान्त रामदासजी ने आचार्य चरणों का पूजन एवं आरती की। आचार्य श्री ने भगवान राम का दर्शन पूजन मन्दिर में किया। तत्पश्चात श्रीमहान्त लक्ष्मणदासजी का स्वागत प्रवचन हुआ और उसके बाद पधारे हुये सभी सन्तों का फूलहार से स्वागत किया गया।

सन्तों की ओर से स्वागत—

सभा मण्डप में पूज्यपाद आचार्य चरणों का सर्वप्रथम स्वागत सौराष्ट्र के श्रीरामानन्दीय सन्त, महान्तों की ओर से वयोबृद्ध श्रीमहान्त स्वामी रामलखनदासजी महाराज रामटेकरी गिरनार वालों ने किया। सन्यासी समाज की ओर से गुजरात भारत साधु समाज के अध्यक्ष श्रीमहान्त गोपालानन्दजी महाराज के कृपापात्र स्वामी मेघानन्दजी महाराज ने किया। तत्पश्चात् कर्णावती अहमदावाद के सन्त, महान्त, श्रीमहन्तों की ओर से गो सन्त सेवी श्रीमहान्त रामेश्वर दासजी महाराज जगन्नाथ मन्दिर वालों ने किया। स्वागत समारोह के बाद सभा में श्रीमहान्तलक्ष्मणदासजी तथा महामण्डलेश्वर विरक्त मण्डलाध्यक्ष

श्रीमहान्त शिवराम दासजी, माननीय महान्त स्वामी रामावतार दासजी एवं पूज्य श्रीखाकी बापू आदि के प्रवचन हुये। अन्त में पूज्यपाद आचार्य चरणों का आशीर्वादात्मक प्रवचन होने के बाद मध्याह्न की सभा समाप्त हो गई।

रात की धर्मसभा—

दिनाँक २४-३ को ही रात ८ बजे आचार्य चरण स्वामी हर्याचार्यजी महाराज की अध्यक्षता में एक विशाल धर्म सभा सम्पन्न हुई; जिसमें लगभग ५ से ६ हजार का जनसमूह उपस्थित था। धर्म सभा में श्रीमहान्त लक्ष्मणदासजी, गिरनार मयाराम दास आश्रम के अध्यक्ष स्वामी अभिराम दासजी तथा खाकी बापू के "सनातन धर्म की महत्ता" पर प्रवचन हुये। उसके बाद पूज्यपाद जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी हर्याचार्यजी महाराज के वचनामृत सुनकर जनसमास में करुणा छा गई। आपने श्रीरामभक्ति महिमा तथा श्रीरामानन्द सम्प्रदाय की गरिमा पर मननीय प्रवचन करते हुये कहा कि "आज हमारा श्रीसम्प्रदाय जो इतना महत्वशाली बना है वह सारा पुनीत प्रताप पूर्व जगद्गुरु रामानन्दाचार्य सारस्वत, सार्वभौम पण्डितराज वैदिक भाष्यकार पूज्यपाद स्वामी भगवदाचार्यजो महाराज का ही है। श्रीमहान्त लक्ष्मणदासजो ने अपने प्रवचन में कहा कि 'पाली-ताणा, में जब सनातन धर्म का तथा रामजी का खण्डन अन्य धर्मावालम्बियों की ओर से किया गया तब पूज्यपाद रामानन्दा-चार्यजी महाराज ही मेरे बुलाने पर पालीताणा आकर उत्तर दिये थे।"

रात के १२ बजे सभा समाप्त हुयी और २५-३ को आचार्य चरणों का भव्य विदाई समारोह सम्पन्न हुआ। श्री महान्त लक्ष्मण दासजी और उनके सभी अनुयायियों ने पूज्य जगद्गुरुजी सहित सबको भेंट पूजा वस्त्र से भव्य सम्मान किया इस प्रकार यह समारोह परिपूर्ण हुआ।

पूज्यचरण श्रीस्वामीजी ने श्रीरामानन्द सम्प्रदाय का गौरव बढ़ाया है तथा समस्त भारतवर्ष में धर्म प्रचार यात्राओं द्वारा धर्म का प्रचार-प्रसार किया है। पूज्य आचार्य चरणों की यह पांचवीं गुजरात यात्रा है। सर्वप्रथम खाकी बापू ने गुजरात में आपको बुलाकर आचार्य उचित सम्मान किया, कराया था तब से आप बार-बार गुजरात बुलाए जाते हैं यही आपकी लोक-प्रियता का उज्ज्वल प्रमाण है। श्रीआचार्य चरण श्रीसम्प्रदाय के रहस्यों के महान ज्ञाता हैं एवं परम श्रीसीताराम पदारविन्द निष्ठ धर्माचार्य हैं।

अन्त में इस समारोह के आयोजक श्रीमहान्त लक्ष्मणदास जी महाराज की सम्प्रदाय एवं आचार्य निष्ठा के लिए तथा वयोवृद्ध सन्त पूज्य खाकीबापू की भक्ति सम्पन्न श्रीराम, रामानन्द एवं सम्प्रदाय निष्ठा के लिए हमारा सादर अभिनन्दन है। श्रीखाकी बापू अकेले ही हिमालय की भाँति अटल रहकर आचार्य सेवा, सम्प्रदाय सेवा श्रद्धा भक्ति पूर्वक की है, यही आपकी सिद्धान्त निष्ठा एवं कर्मठता है। आप मान बड़ाई से रहित एक विनम्र सन्त हैं और वास्तविक लोकसन्त हैं, कर्मवीर हैं।

-ले० रामदेवदास शास्त्री
व्याकरण, वेदान्ताचार्य

✡ श्रीजानकीवल्लभो विजयते ✡

❀ श्रीहनुमत् कवच का हरिभाष्य ❀
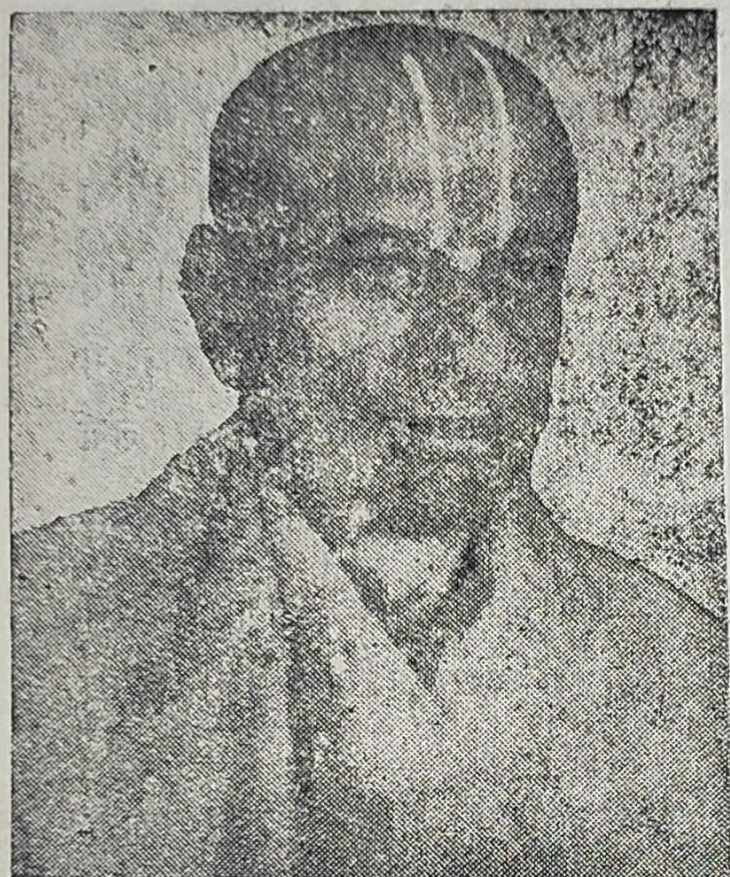
वर्तमान श्रीरामानन्द सम्प्रदायाचार्य जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी श्रीहर्याचार्य जी महाराज ने श्रीहनुमत् कवच पर जो हरिभाष्य प्रकाशित किया है उसे आदि से लेकर अन्त तक दो बार पढ़ गया।

पूज्य आचार्य श्री ने वेद, शास्त्र, पुराण, तन्त्र, रामचरित मानस, विनय पत्रिका, दोहावली, वरवै रामायण, गीतावली, आनन्द रामायण, वाल्मीकि रामायण, महाभारतादि अनेक ग्रन्थों से हनुमान्‌जी की दिव्य कथाओं का प्रमाण सरल, सुन्दर एवं सुबोध हिन्दी भाषा में देकर श्रीरामजी तथा श्रीहनुमान्‌जी की परम पावन उपासना का हृदयगम्य रहस्य बताया है, वह वास्तव में अपने आपमें अनुपम है। महान् विद्वान् महापुरुष से लेकर एक साधारण मनुष्य भी हनुमत् उपासना, भगवत् उपासना श्रीहनुमत कवच भाष्य को पढ़कर समझ सकता है और कर

सकता है। इतना ही नहीं श्रीहनुमानजी की परमपावन कृपा से अपने जीवन को भी कृतार्थ कर सकता है।

परमपूज्य आचार्य चरणों ने श्रीगीताभक्ति दर्शन, उपनिषद् भाष्य, वेदों में अवतार रहस्य, हनुमत् कवच भाष्य और श्री-सम्प्रदाय मंथन जैसे अनेक अमूल्य ग्रन्थ रत्न देकर एक सच्चे जगद्गुरु के धर्म का पालन किया है, और श्रीरामानन्द सम्प्रदाय की नींव को पाताल तक स्थिर करने वाले वेदावतार अनन्य श्रीसीताजी के पदारविन्द निष्ठ, साकेतवासी जगद्गुरु रामा-नन्दाचार्य वेदोपनिषद् गीता ब्रह्मसूत्र भाष्यकार पण्डितराज सारस्वत सार्वभौम पूज्यपाद **स्वामी भगवदाचार्यजी महाराज** की पावन परम्परा का निर्वाह करते हुये सनातन जगत् की महती सेवा की है।

आप आचार्यपद प्रतिष्ठित होते ही अपने पुरोगामी आचार्य रचित **श्रीसम्प्रदाय समय:** की श्रीहरितोषनी हिन्दी टीका करके अपने पूर्वाचार्य को प्रथम अपनी भावांजलि प्रदान की है। यही आपकी परम्परानिष्ठा का उज्जवल प्रमाण है। अपनी परम्परा पर तो सभी को निष्ठा होती है परन्तु आचार्य परम्परा में जिसे निष्ठा है वही सच्चा सम्प्रदाय निष्ठ है। श्रीरामानन्द सम्प्रदाय के ३६ द्वारे, सभी पावन अखाडे परमार्थरत सभी खालसाओं के समस्त रहस्यों को उनके दिव्य भव्य इतिहास को वर्तमान आचार्यचरण स्वामी हर्याचार्यजी महाराज ने श्रीसम्प्रदाय मंथन में बड़े गौरव के साथ वर्णन किया है, इसलिए वे वास्तव

में जगद्गुरु हैं । आपके परमपावन ग्रन्थों के पन्ने-पन्ने में श्री सीताराम पदारविन्दों की उपासना का रहस्य तथा हनुमत् उपासना का रहस्य, श्रीसम्प्रदाय का पावन रहस्य कूट-कूटकर भरा है । श्रीहनुमत् उपासना के तो आप मूर्तिमान स्वरूप हैं, मैं इस बात का साक्षी हूं । सूरत में श्रीमहान्त कल्याणदासजी खाकी के मारुति धाम में **श्रीमरुति यज्ञ** की महिमा पर आचार्य चरण ५ दिनों तक बोले, सभी विद्वान् नतमस्तक हो गये । श्रीचरणों की धर्म सभा में लगभग दस हजार जनसमूह आपकी दिव्य अमृतवाणी श्रवण करने के लिये सूरत से ८ किलोमीटर दूर बराछा में एकत्रित होता था, यही श्रीहनुमानजी की उपासना का प्रत्यक्ष प्रमाण है । स्वामी हर्याचार्यजी महाराज मेरे मत से **"सकल गुणनिधान"** महापुरुष हैं । विनम्र तो आप इतने हैं कि सूरत में जब हमारे काठिया परिवाराचार्य स्वामी रामकिशोर दासजी महाराज आचार्यचरणों से मिलने गये तो आपने उन्हें हाथ पकड़कर अपने साथ बैठा लिया, जैसे पूज्यपद आचार्य चरण स्वामी भगवदाचार्यजी महाराज तत्कालीन मंगलपीठाधीश स्वामी रामनारायणदासजी महाराज तथा ब्रह्मपीठाधीश स्वामी जगन्नाथ दासजी महाराज एवं गो सन्त सेवी श्रीमहान्त नरसिंह दासजी महाराज को अपने साथ बैठा लेते थे । इतना ही नहीं जब वे महापुरुष श्रीस्वामीजी के पास जाते थे तब वे उठकर इनका अभिवादन करते थे । यही तो महापुरुषों की महानता है ।

हमारे श्रीमद् स्वामी हर्याचार्यजी महाराज ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, विवेक आदि दिव्य गुणों से समलंकृत हैं इसी से उनकी

वाणी एवं लेखनी से श्रीराम भक्तिरूपी अमृत झरता है। आप वर्तमानकाल में परम सात्विक महापुरुष हैं, आपके रोम-रोम में श्रीसम्प्रदाय निष्ठा भरी है। इसी से आपके द्वारा रचित ग्रन्थों के पन्ने-पन्ने में श्रीरामजी और श्रीहनुमानजी की उपासना का रहस्य भरा है। श्रीहनुमत्‌कवच का हरिभाष्य उसका उज्जवल प्रमाण है। ☆ जय श्रीराम ☆

–स्वामी श्रीखाकी बापू

स्वामीजी महाराज के सन् १९९५-९६ में होने वाले कार्यक्रमों संक्षिप्त विवरण

२६-२-९५ से ३०-२-९५ तक चित्रकूट में आयोजित २२ वें रामायण मेला की अध्यक्षता स्वामीजी ने की। इस कार्यक्रम के मुख्य अतिथि उत्तर प्रदेश के **महामहिम राज्यपाल श्रीमोतीलाल वोरा थे**। प्रातःकाल मंदाकिनी में स्नान करने के पश्चात् श्रीस्वामीजी की भव्य शोभायात्रा निकाली गई, जिसमें चित्रकूट के सातों अखाड़ों के निशान स्वामीजी के स्वागत में आये थे। स्वामीजी के द्वारा निशानों का पूजन सम्पन्न हुआ। तदन्तर शोभायात्रा **रामायण मेला** क्षेत्र की ओर प्रस्थान की, इसमें लगभग ५ सौ सन्त, महान्त व सर्वसामान्य संभ्रान्त नागरिक बाजे गाजे के साथ उपस्थित थे। मंच पर स्वामीजी सिंहासनासीन हुए, स्वामीजी का राज्यपाल महोदय ने माल्यार्पण और पूजन करके स्वागत किया। अपने अध्यक्षीय उद्‌बोधन में श्रीस्वामीजी ने कहा: भगवान श्रीराम का अवतार इस धराधाम पर

इसलिये होता है कि जो संसार में उपेक्षित है, उनको गौरव प्रदान करना, श्रीराम का समग्र जीवन इसी कार्य में लगा रहा। दीनों को गौरव प्रदान करने के लिए श्रीरामजी वनवास भी स्वीकार करते हैं। वन में जाकर मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम ने पतितोद्धार किया। उन गिरिजनों को जोड़ा जो केवल उदर पोषण को ही अपना परम धर्म समझते थे। वहाँ पर उपस्थित जनसमूह स्वामीजी के भाषण को सुनकर मन्त्रमुग्ध हो गयी। करतलध्वनि से सारी सभा गूंज उठी।

११ मार्च से १४ मार्च तक अनन्त श्रीस्वामी हर्याचार्यजी महाराज का कार्यक्रम औरय्या में सम्पन्न हुआ। यह कार्यक्रम भक्ति शास्त्र के सरस प्रवक्ता और संन्यास धर्म के परम व्याख्याता स्वामी श्रीअखण्डानन्दजी महाराज के शिष्य स्वामी रामप्रेमानन्द द्वारा आयोजित किया गया था। उस कार्यक्रम में स्वामीजी ने **"रामो विग्रहवान् धर्मः"** पर विशद चर्चा की जिससे श्रोतागण मन्त्र मुग्ध हो गये। ऐसा मालूम पड़ा मानो वीणा वादिनी भगवती भारती अपनी समस्त कलाओं के साथ उपस्थित हों। २५ अप्रैल से ३० अप्रैल ग्राम पिंगली जनपद पालीताड़ा (सौराष्ट्र) में स्वामीजी का कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। यह कार्यक्रम महामण्डलेश्वर स्वामी श्रीलक्ष्मणदासजी महाराज की अध्यक्षता में पूर्ण हुई। १२ मई से २० मई कुञ्जविहारी मन्दिर आतिया तालाब (झाँसी उ०प्र०) में स्वामीजी के द्वारा श्रीमद्भागवत कथा सम्पन्न हुई। कुञ्ज बिहारी मन्दिर के श्रीमहान्त बिहारी

दास जी महाराज जो एक उच्चकोटि के भजनानन्दी सन्त हैं। वे अपने श्री गुरु महाराज की मूर्ति प्रतिष्ठा के उपलक्ष्य में स्वामीजी द्वारा भागवत कथा सम्पन्न कराये ।

इस कार्यक्रम में देश के विशिष्ट धर्माचार्य उपस्थित थे। १—जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती । २—शंकराचार्य स्वामी चिन्मयानन्द । ३—श्री महान्त नृत्य गोपाल दास जी महाराज । ४—जगदाचार्य स्वामी विवेकानन्द जी महाराज। कार्यक्रम के मुख्य अतिथि उत्तर प्रदेश के महामहिम राज्यपाल श्री मोती लाल वोरा जी थे। श्री राज्यपाल महोदय ने सभी धर्माचार्यों को अर्जुन को गीता का उपदेश देते हुए श्याम वर्ण विशिष्ट कन्हैया की रथारुढ़ दिव्य मूर्ति और स्वर्ण मंडित अभिनन्दन पत्र अर्पण करके सभी जगद्गुरु महानुभावों का स्वागत किया। श्री कुञ्ज विहारी जी की सन्निधि में स्वामी जी श्री मद्भागवत में बाल गोपीगीत, लीला रास लीला परिणय लीला की विशद व्याख्या प्रस्तुत की। सन्त सम्मेलन के मञ्च पर स्वामी जी महाराज ने कहा कि परमात्मा भक्त-भोग्य है विद्वद् भोग्य नहीं। यदि हमारे पास कुछ नहीं है तो भी भगवती भक्ति महारानी की अविरल कृपा हो जाती है। "अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्। १३ जनवरी से से १५ जनवरी तक ग्राम खनेता जनपद भिण्ड (म० प्र०) में स्वामी जी का कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। यह कार्यक्रम ज्ञान और वयोवृद्ध गौ-ब्राह्मण सन्तसेवी भागवत भूषण पंडित श्री विजय-

रामदासजी महाराज के अमृतोत्सव के उपलक्ष्य में किया गया। संयोग से उस दिन भगवान् श्रीरामानन्दाचार्य की जयन्ती थी। उनके कृतित्व का वर्णन करते हुए स्वामीजी ने कहा-प्रयागराज की पावन स्थली पर ६९६ वर्ष पूर्व भगवान् श्रीराम ने स्वामी रामानन्दाचार्य के रूप में अवतरित होकर विश्वबन्धुत्व का संदेश दिया था-**"रामानन्दः स्वयं रामः प्रादुर्भूतो महीतले"**। आनन्दभाष्य और श्रीवैष्णव मताब्जभास्कर के माध्यम से छुआ छूत, ऊँच नीच आदि के भेद को तोड़कर समस्त मानवता को श्रीराम भक्ति गंगा की धारा में प्रवाहित की। प्रमाण रूप में रविदास, कबीर, सेन, धन्ना आदि उनके १२ प्रधान शिष्य रूपमें अनुयायी हुये। वैदिक सिद्धान्त के पूर्ण आचरण से भरपूर इस सम्प्रदाय के लाखों सन्त आज भी उस अक्षुण्ण परम्परा के पालन में तत्पर हैं।

३० मार्च से ३ अप्रैल ग्राम बम्हौरी करेली जिला नृसिंह पुर श्रीरामाश्रित सत्संग मण्डल द्वारा यह कार्यक्रम आयोजित किया था माध्यम प्रहलाददास पटेल। अपने भाषण में स्वामी जी ने श्रीरामप्रेम की—

रामहि केवल प्रेम पियारा। जानि लेहु जो जाननि हारा॥

विशद व्याख्या करते हुये कहा कि हमारे श्रीरामजी को केवल प्रेम प्रिय है। यही कारण कि परमपिता परमात्मा श्रीराम मां कौशल्या के समक्ष नाचते दिखाई देते हैं और भी कल्याणकारी सामाजिक, आध्यत्मिक, वैज्ञानिक चर्चायें की गई। वहाँ पर उपस्थित जनसमूह मुग्ध हो गया।

अपने समापन उद्‌बोधन में श्री स्वामी जी ने श्री भक्ति तत्व की विशदचर्चा की। जिस ब्राह्मण में दान, जप, वेदाध्ययन, तप, शम, दम, मौन, एकान्तवास, शौच, सत्य अहिंसा, और नियम पालन ये बारह गुण हों, किन्तु वह भगवान् के चरणारविन्द से विमुख हो तो उससे भगवान की भक्ति करने वाले चाण्डाल भी श्रेष्ठ हैं, क्योंकि जिसने अपनी वाणी, मन, प्राण, भगवान् को समर्पित कर दिया वह तो अपनें कुल को पवित्र कर देता है और समाज को भी पवित्र कर देता है। स्वामी जी की कथा सुनकर वहाँ की जनता आनन्द से विभोर हो उठी, वहाँ के एक विद्वान ने अपने स्वामी जी के स्वागत भाषण में कहा कि आप वेद उपनिषद् श्री मद्भागवत और मानस के सुन्दरता को ऐसी खुशी से वर्णन करते हैं कि लगता है, कभी गोस्वामी जी तो कभी शुक जी स्वयं अपनी वाणी प्रकट कर रहे हों। ३० मई से २ जून तक ग्राम मोहन गढ़ (टीकमगढ़) में सर्वधारी नाम सम्त्सर महायज्ञ सम्पन्न हुआ इस यज्ञ को संपन्न करने वाले श्रीसंतोषी बाबाजी (वाराणसी) अपने भक्तों की भावना पूर्ण करने के लिए श्री स्वामी जी का आह्वान किया।

१३ से १५ अप्रैल ९६ तक स्थान इमामगंज--शेरपुर जिला–औरंगाबाद (विहार) वहां की यज्ञ समिति ने बड़े आदर पूर्वक स्वामी जी का आह्वान किया, माध्यम शिवेन्द्र बहादुर सिंह।

१० मई से १६ मई तक श्रीस्वामीलक्ष्मणदासजी महाराज को अध्यक्षता में उन्हीं द्वारा संस्थापित श्रीरामजानकी मन्दिर पालीताणा (सौराष्ट्र) में श्रीमद्भागवत सप्ताह ज्ञानयज्ञ का शिविर श्रीस्वामीजी महाराज के मुख्य आचार्यत्व में सम्पन्न होगा। इसमें गुजरात के सभी विशिष्ट सन्त समाज उपस्थित होंगे।

–रमेशदास श्रीवैष्णव

इस प्रकार आचार्य चरणों का संक्षिप्त कार्यक्रम विवरण है। इसके अतिरिक्त सैकड़ों कार्यक्रमोंमें आप श्रीरामानन्दसम्प्रदाय को शोभा बढ़ाते रहते हैं। अनेक पत्र पत्रिकाओं हेतु लेख स्वयं लिखते हैं। यह अतिशयोक्ति नहीं है कि भारत के धर्माचार्यों में हमारे जगद्गुरु रामानन्दाचार्य श्रीस्वामी हर्याचार्यजी महाराज अद्वितीय तात्विक वक्ता हैं। सभा में विराजमान हजारों लाखों आवाल–बृद्ध नर–नारी आपके प्रवचनों में एक समान आनन्द प्राप्त करते हैं। ६५ वर्ष की लगभग अवस्था में भी आपके स्वर, साहस और उत्साह में नवनवायमान किशोर अवस्था का दर्शन होता है। वेदों, उपनिषदों, पुराणों ऐतिहासिक ग्रन्थों तथा अन्य धर्मशास्त्रों के साथ श्रीतुलसीग्रन्थावली का जो समन्वय श्रीस्वामीजो प्रस्तुत करते हैं, और उसी के साथ वर्तमान समाज का दर्शन जिस तत्परता से उभारते हैं, यह विशेषता प्रायः अन्य वक्ताओं में दुर्लभ है। वर्तमान में संगीत के साथ कथाकारों की बाढ़ सी आ गयी है। संगीत और म्यूजिकवाद्य स्वर से जनता को रिझाना एक अलग बात है किन्तु मात्र शास्त्रीय और सैद्धान्तिक वाक्शक्ति से जनसामान्य को प्रबोध प्रदान करना तपस्या, ब्रह्मचर्य और अनन्य उपासना से ही सम्भव है, जो हमारे श्रीस्वामीजी महाराज में नैसर्गिक रूप से सिद्ध है ॥ इति ॥

–रामनाथदास